योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

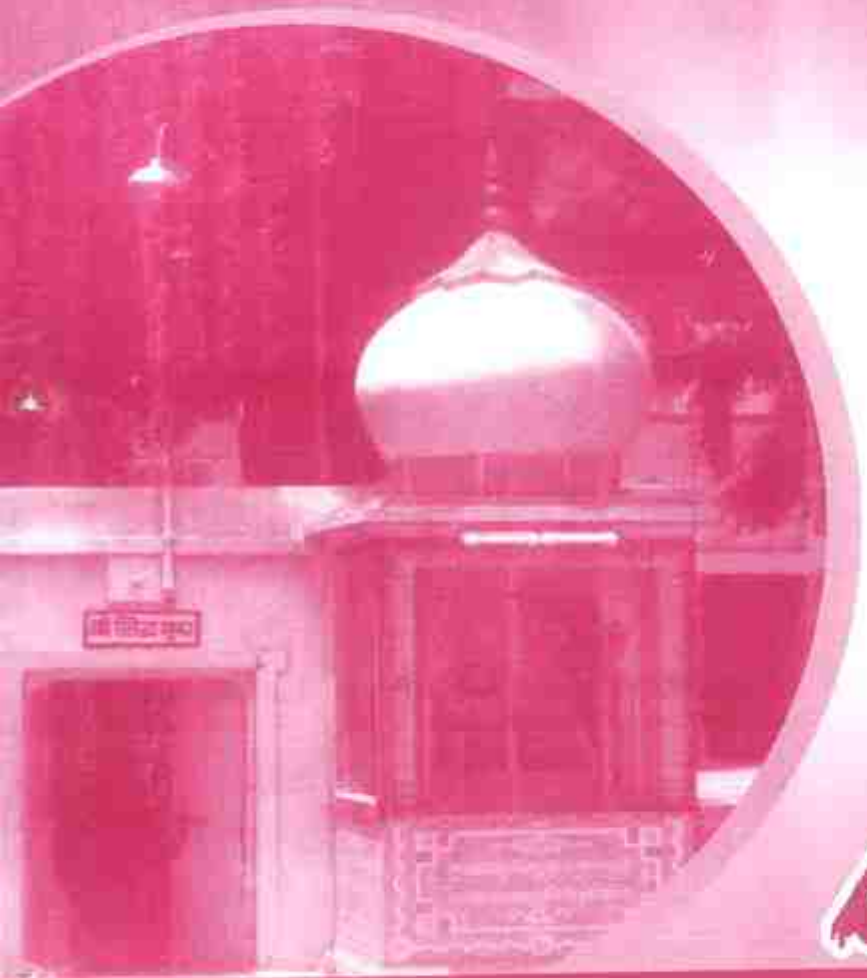

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

वर्ष : 56 : अंक : 08

प्रकाशन तिथि : 01.11.2023

मूल्य - एक प्रति : 22/- , वार्षिक : 230/-

अमृतकण

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।।

जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुष को इहलोक और परलोक में कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती।

◆ ◆ ◆

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जो विताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति।।
अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दोषशतावहा।
अधर्म बहुला चैव तस्मातां परिवर्जयेत्।।

जब मनुष्य का शरीर जीर्ण होता है, जब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं; किन्तु धन और जीवन की आशा बूढ़े होने पर भी जीर्ण नहीं होती वह सदा नई ही बनी रहती है। तृष्णा का कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है। वह ढेरों दोषों को ढोये फिरती है। उसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं; अतः तृष्णा का परित्याग कर दें।

◆ ◆ ◆

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्ति पैशुनम्।
दया भूतेष्व लोलुप्तवं मार्दवं ह्रीरचयापलम्।।

मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्रकार से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण करना, अपने प्रति उपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्तापन का अहंकार न करना, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चंचलता, आसक्ति, क्रूरता आदि दुराचारी गुणों का अभाव होना आदि अच्छी आचार संहिता के लक्षण हैं।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 नवम्बर 2023 अंक : 08

रहस्येदं न वक्तव्यं तवाग्रे कथितं मया
सुगोप्यं च प्रयत्नेन येनात्मत्त्वमवाप्स्यसि

इस रहस्य को कहना न चाहिए, तुम्हारे आगे मैंने कहा है। प्रयत्न से गुप्त रखने योग्य है, जिससे आत्मत्व को प्राप्त होगी।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज 03
2. सम्पादकीय 07
3. श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा- डॉ. विजय सिंह 13
4. लीलाधारी की लीलाऐं- श्री जगदीश राए बंसल 16
5. मंत्र चिन्तामणि- श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय 21
6. ध्यान क्यों?- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा 23
7. पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्- आयुर्वेदीय विधिविधान 30
8. तद्धाम परमं मम- स्वामी निर्विकारानन्द सरस्वती 32
9. सुख का रास्ता क्या है?- श्री अन्तूराम यादव 36

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1500.00

विशेष लेख

वाणी और उसका तप

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै आपहु शीतल होय।। —कबीर

सृष्टि के निर्माता ने मनुष्य को जो अनुपम और अमूल्य काय सम्पदा प्रदान की है उसमें वाणी का स्थान सर्वोपरि है। किन्हीं आचार्य के ये शब्द अक्षरशः सही हैं कि 'वाणी ईश्वर द्वारा मनुष्य को दी गई एक बड़ी देन है, मनुष्य के चिन्तन का वह फलित हैं और चिन्तन का साधन भी वही है। चिन्तन के बगैर वाणी नहीं और वाणी के बिना चिन्तन नहीं तथा इन दोनों के अभाव में मनुष्य जीवन की भी कोई उपादेयता नहीं।'

'मननात् मनुष्यः' की उक्ति के अनुसार मनुष्य वही है जो मननशील और चिन्तन प्रधान होता है। और चिन्तन की अभिव्यक्ति बिना वाणी के नहीं हो सकती इसलिए वाणी का अपना महत्व है। मनुष्य इसके बिना जीवन की पूर्णता के आनन्द का उपभोग नहीं कर सकता, और न संसार में रहकर वह अपना जीवन व्यवहार ही सुचारु रूप से चला पाने में समर्थ हो सकता है। इसलिए वाणी की इस अनुपम और अनोखी देन के लिए हमें विश्व–निर्माता का कृतज्ञ होना ही चाहिए। लेकिन हमारी यह कृतज्ञता प्रभु को तभी स्वीकार हो सकती है जब हम वाणी का सदुपयोग करके उसकी सार्थकता सिद्ध करते रहें। वाणी की यह सार्थकता उसके सत्यनिष्ठ होने में है। जो कुछ भी हम बोलें वह सत्य हो और सत्य के साथ–साथ प्रिय भी हो, इसका ध्यान हमें सदैव रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेद भगवान् का भी यह स्पष्ट आदेश है–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

अर्थात् हम सत्य बोलें। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि हमारा सत्य भाषण प्रिय हो, अप्रिय नहीं। अप्रिय सत्य बोलना वेद की उपरोक्त उक्ति के अनुसार, सत्य की परिभाषा में नहीं आता। अखिल जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द ने भी प्रकारान्तर से ऐसा ही परामर्श श्रीमद्भगवद्गीता में अपने सखा अर्जुन को दिया है–अध्याय 17 में वे कहते हैं–

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यंप्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तपउच्यते।।

अर्थात् हे अर्जुन! हमेशा इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारी वाणी से सत्य और हितकारी वचन ही निकले। कोई ऐसी बात किसी को मत कहो जो उसके मन को उद्वेलित और विचलित कर देने वाली हो। सदैव स्वाध्याय और चिन्तनशील बने रहकर ऐसी स्थिति को पा लेना ही तप कहा गया है।

वाणी का यह तप कैसे प्राप्त हो इसके लिए भगवान् ने उसे परामर्श दिया है कि मानस तप की साधना ही ऐसी स्थिति तुम्हें सहजतया प्राप्त करा देगी। इसी अध्याय के 16 वें श्लोक में मानस तप को परिभाषित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानस मुच्यते।।17/16।।

यानी मन की प्रसन्नता या मन की परम शान्ति स्वच्छता, सौम्यता, मौन, अन्तःकरण का संयम होने पर वाणी का संयम भी सहज ही प्राप्त हो जाता है। आचार्य शंकर इसी सम्बन्ध में कहते हैं कि कार्य कारण न्याय के अनुसार मन के निग्रहीत, सौम्य और शुद्ध हो जाने पर वाणी का तप अर्थात् सत्य और सर्वजन हितकारी वचन बोलने का अभ्यास सुलभ हो जाता है।

योग–दर्शन में तप का अपना महत्व है। वैराग्य और तप की साधना की वृत्ति को अपना लेने से ही साधक समाधि की ओर अग्रसर होता है। भगवान् पतञ्जलि ने तप की परिभाषा–**'द्वन्द्व सहनं तपः'** शीर्षक सूत्र में वर्णित है। किसी लक्ष्य की साधना में साधक को भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों से गुजरने पर ये द्वन्द्व उसे विचलित न करें, लक्ष्य से उसे डिगा न सकें यही तप का स्वरूप है। वाणी के तप की साधना में भी ये द्वन्द्व कभी–कभी साधक को सत्यनिष्ठ नहीं बने रहने देते। आवरणों और विक्षेपों के रूप में ये उसकी लक्ष्य प्राप्ति में अवरोधक बनकर उसे पथभ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं। जो इन अवरोधों से बाधित नहीं होता वही सत्य का परम उपासक माना जाता है। योगियों और योग–साधकों के लिए तो सत्य के व्रत की अवधारणा अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य बताते हुए उसे यमों में शामिल कर दिया है। यथा–

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहयमाः।'

–योगदर्शन सा. पा.30

अहिंसा और सत्य दोनों एक दूसरे के अनुपूरक हैं सत्य वही होगा जो हिंसा रहित हो। जो हितकारी नहीं है, हिंसा रहित नहीं है वह सत्य नहीं हो सकता। जो हित–सहित है वही सत्य है। हित भी किसी एक व्यक्ति का नहीं किन्तु बहुजन हिताय बहुजन सुखाय होना चाहिए। योगदर्शनकार भगवान् पतंञ्जलि ने योग–दर्शन के साधनपाद के सूत्र 36 में ऐसे सर्वजन हिताय और बहुजन सुखाय सत्य की प्रतिष्ठापना का फल आश्रयत्व गुणों

से युक्त होता है। पढ़िये उनका सूत्र–

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

अर्थात्–सत्य के प्रतिष्ठित होने पर वाक्य क्रिया फल के गुणों से युक्त होता है। इस सूत्र पर भगवान् व्यासदेव की व्याख्या इस प्रकार है–

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति; अमोघास्य वाग्भवति।

आशय यह है कि सत्य को प्रतिष्ठित कर लेने वाला साधक जिस किसी को जो भी वरदान देता है। वह सफल हो जाता है, यदि किसी को निरोगी हो जाने का आशीर्वाद दिया तो निश्चय ही उसके रोगादि दूर हो जाते हैं। लेकिन ऐसा होता तभी है जब योगारूढ़ साधक प्राण रक्षार्थ भी मिथ्या कहने का विचार मन से निकाल देते हैं और सर्वदा **'सत्यं च प्रियहितं च अनुद्वेगकरं वाक्यम्'** बोलने के अभ्यासी हो जाते हैं।

सृष्टि संचालन में भी ऋत और सत्य ऐसे दो अटल स्तम्भ हैं जिन पर समूची सृष्टि का व्यापार चाहे वह आध्यात्मिक हो या व्यावहारिक चलता रहता है।

ऋतंञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्य जायत।
ततो रात्र जायत ततः समुद्रो अर्णवः।।

इत्यादि, मन्त्र हमारे इस कथन का प्रमाण है कि समूची सृष्टि और उसका व्यापार सत्य और ऋत के आधार पर ही चल रहा है। हमारी शिक्षा–नीति का पहला पाठ भी **''सत्यंवद धर्मं चर''** से आरम्भ होता है। यदि सत्य नहीं है तो धर्म भी नहीं है। सत्य और धर्म दोनों एक दूसरे के आश्रित रहकर ही अस्तित्व में बने रहते हैं। वाणी सत्य से भी शोभित होती है, इसलिए सत्य को ही वाणी का भूषण बताया गया है।

यह भी प्रसिद्ध है कि योगदर्शन के रचनाकार महर्षि पतञ्जलि ही एक ऐसे पुरुष हुए हैं जिन्होंने चित्त शुद्धि के लिए योग सूत्रों का निर्माण किया। शरीर शुद्धि के लिये वैद्यक ग्रन्थों को लिखा और वाक् शुद्धि के लिए व्याकरण महाभाष्य बनाया। इन तीनों ग्रन्थों के एक ही लेखक पतंजलि महामुनि थे अथवा अलग–अलग यह ऐतिहासिक शोध का प्रश्न हो सकता है पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि व्याकरण महाभाष्य की रचना का उद्देश्य वाणी को शुद्ध रखना ही था।

अतः वाणी को शुद्ध बनाने के लिए हमें न केवल व्याकरण के नियम उपनियमों का ध्यान रखना आवश्यक है बल्कि यह भी आवश्यक है कि वाणी सदैव सत्य से विभूषित रहे। यजुर्वेद में ऐसे अनेक मन्त्रों का दर्शन हमें पढ़ने को मिलता है जो हमें सत्य जीवन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते रहते हैं। ''मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहता है कि सत्य का मुख सदा मोहक हिरण्यमय पात्र से ढका रहता है। इसलिए मनुष्य चाहते हुए भी सत्य धर्म का दर्शन नहीं कर पाता, इसलिए ऋषि प्रार्थना करता है कि हे प्रभु सत्य धर्म के

दर्शन के लिए तू इस मोहक आवरण को हटा दे। ऋषि के शब्दों में पूरा मन्त्र इस प्रकार है–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखं।
तत्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

मन्त्र का आशय यही है कि सत्य को धारण करने का मार्ग तो कल्याणकारक है किन्तु उस तक पहुँचने में लोभ, मोह, मद आदि ऐसे आवरण हैं जो उस तक भी पहुँच नहीं होने देते–प्रभु कृपा से ही इन आवरणों का भंजन होता है, इसलिए पूषन्–परमात्मा से इन्हें हटाने की प्रार्थना की गई है। क्यों आवश्यक है सत्य की अवधारणा यह भी मन्त्र के अन्तिम भाग में ''सत्य धर्माय दृष्टये''–पद के द्वारा बता दिया गया है। धर्म तत्व क्या है, कैसा है ? यह बिना सत्य भाषण का व्रत लिये समझाया जा ही नहीं सकता। सत्य के व्रत के धारण की इस ही महत्ता के कारण आचार्यों ने डंके की चोट पर यह घोषणा की है कि सत्य ही परमब्रह्म परमेश्वर है, सत्य ही नारायण है और सत्य ही देवाधिदेव महादेव है। **'न हि सत्यात्परो धर्मः'**–ऐसा भी निर्विवाद रूप से आचार्यों का सर्व–सम्मत उद्घोष है। जो सत्य से अलग है, प्रतिकूल है, उसका विलोम है वही अनृत है, झूठ और मिथ्या है पाप है। सन्त कबीर ने भी अपने साधकों से इसीलिए कह दिया–

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप।।

योग का पथ तो सत्य का ही पथ है। बिना सत्य के जीवन में प्रतिष्ठित हुए लोग समाधि सिद्धि का लाभ ले ही नहीं सकते। इसलिए समस्त योग–पथ पर चलने वाले साधकों से साथ ही अन्य लोगों से भी जो अपने जीवन व्यवहार को सुख और शान्ति के साथ व्यतीत करना चाहते हैं, हम यही परामर्श देंगे कि वे सत्य व्यवहार करने और सत्य बोलने के आचरण को प्राथमिकता देते हुए वाणी के तप को जो सत्य भाषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, अपने दैनिक अभ्यास का अंग बना लें। इसी में उनके जग–जीवन का कल्याण निहित है।

भारतीय इतिहास में सत्य–धर्म को अपने सर्वस्व को समर्पित कर देने के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। राजा हरिश्चन्द्र को सत्य की रक्षार्थ ही अपना राजपाट छोड़कर श्वपच के घर नौकरी करके अपने दिन गुजारने पड़े थे। अपने पिता के सत्य–व्रत की रक्षा के लिए ही राम को राजगद्दी का परित्याग करके वन जाना पड़ा था। भगवान कृष्ण का जीवन सत्य और धर्म के अभ्युत्थान के लिए ही संकलित था, जिससे सारा संसार आज भी प्रेरणा प्राप्त कर रहा है।

सम्पादकीय–

सिद्धयोग, सिद्धयोगी एवं शक्तिपात

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

मैंने श्री सिद्धगुफा संवाई नाम के ग्रुप के अन्तर्गत सिद्धयोग पर कुछ लिखने का प्रयास किया। पाठकों का आग्रह है कि राष्ट्रभाषा में लिखा जाये ताकि ज्यादा लोग लाभान्वित हो सकें अतः यह हिन्दी में लिखी जा रही है। मैंने पिछले लेखों में बताने का प्रयास किया था कि सिद्धयोगी कौन होता है तथा ये भी बताया था कि सिद्धों की दो श्रेणियाँ हैं तथा व्यवहार में सिद्धयोग व शक्तिपात योग कितना व्यापक हो रहा है–मैंने बताया था कि एक तो ..नादि सिद्ध होते हैं जो स्वतः सिद्ध होते हैं, अवतार कहे जाते हैं। उनको अज्ञान का लेश नहीं छू सकता क्योंकि ये स्वतः ज्ञान स्वरूप हैं। ये व्यवहार में कार्य जगत में आने पर भी वस्तुतः त्रिगुणातीत अवस्था में ही रहते हैं। दूसरी श्रेणी के वे सिद्ध होते हैं जिन्होंने अविद्यादि क्लेश व अज्ञान को किसी अवतार की कृपा से, सिद्ध गुरु की कृपा से या अत्यन्त कई जन्मों की साधना से दूर कर मुक्ति भाजन हो चुके हैं। ये साधना सिद्ध कहलाते हैं और कैवल्य पद के भागी होते हैं और ईश्वर तुल्य हो चुके होते हैं। ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध अपने बच्चों पर शक्तिपात या शक्तिसंचार कर सकते हैं। अनादि सिद्ध भी शक्तिपात करते हैं तथा अन्य सिद्धयोगी भी शक्तिपात करते हैं। शक्तिपात करना गुरूदेव की इच्छा पर निर्भर है। शास्त्रों में शक्ति संचार के कई प्रकारों का उल्लेख मिलता है। सिद्धगुरूदेव हाथ के स्पर्श से, वाणी अथवा आशीर्वाद से, चक्षु से देखकर के, किसी को हृदय से लगा करके अथवा केवल मन में संकल्प करके ही शक्तिपात कर दिया करते हैं। अधिकतर स्पर्श करके प्राणों के संचार द्वारा गुरुदेव शक्ति का संचार या प्रक्षेप किया करते हैं। वैसे हर मनुष्य में शक्तियों का वास रहता है हर समय आत्मशक्ति ऊर्जा के रूप में रोम–रोम से प्रस्फुटित होती रहती है। भोगी व्यक्ति इस शक्ति को इन्द्रिय द्वारों से, अशुभ चिन्तन से, राग–द्वेष से, अनावश्यक संकल्प से इसे नष्ट करता रहता है। जबकि योगी का अपने मन पर पूर्ण संयम होने से वह शक्तियों का भण्डार होता है। आत्म दर्शन हो जाने पर निर्विकल्प में प्रतिष्ठित होने

पर वह अच्युत की श्रेणी में आ जाता है जब तक इस श्रेणी को प्राप्त नहीं होते, भोग किसी न किसी रूप में बना रहता है और शक्ति क्षीण होती रहती है। **'चिदावसानो भोगः'** अर्थात् जब तक चित्त का अस्तित्व बना हुआ है तब तक भोग की श्रेणी में ही आता है। सतोगुण की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर योगी के रोम-रोम से प्रकाश की किरणें निकलती हैं। वैसे हर व्यक्ति का अपना आभामण्डल होता है जिसका जितना आत्मविकास है उतना ही आभामण्डल व्यापक होता है। इस आभा मण्डल को ध्यान योगी ध्यान के नेत्रों से देख सकते हैं। हमारे गुरुदेव की योग परम्परा अनादि सदाशिव से चली आ रही है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि श्रीप्रभु जी केवल अपने बच्चों पर ही नहीं, अदीक्षितों पर भी कृपा करते हैं। यही बात आज देखने में आ रही है कि नये श्रद्धावान साधकों पर भी श्रीप्रभु जी की कृपा पहले की तरह ही बनी हुई है। गुरुदेव तो साधक के हृदय में ही आत्मदेव के रूप में विराजमान है वे सब जानने वाले हैं। **'गुरुकृपा हि केवलम्'** गुरु कृपा ही शक्ति संचार का कारण बनता है। गुरुदेव की कृपा से 10-12 घण्टों तक साधकों को एक ही आसन में बैठा हुआ हम लोगों ने देखा है। गुरुकृपा एवं शक्तिपात से ही यह संभव है। शक्तिपात भी हल्के, गहरे आदि भेद से कई प्रकार का गुरुदेव बताया करते थे। जैसा आवश्यक समझते हैं, श्रद्धा या क्षमता के अनुसार गुरुदेव शक्ति संचार करते हैं। शक्तिपात के प्रसंग में एक दिन गुरुदेव ने अपने पिता के विषय में बताया था। अपने पिता को गुरुदेव ने श्री प्रभु से योग दीक्षा दिला दी थी। यद्यपि वे कट्टर आर्य समाजी थे। जब पिता जी का अन्तिम समय निकट आया तो प्रभु जी ने गुरुदेव को पिता जी की सेवा के लिए भेज दिया और कहा 'वे जैसा उपदेश दें वैसा ही करना'। पिता जी उन्हें देखकर प्रसन्न हुए और कहा बेटा! तुम्हारे गुरु सर्व समर्थ हैं। उनकी चरण शरण कभी भी नहीं छोड़ना और निरन्तर सेवा में रहना। कुछ दिन बाद पिता जी का देहान्त हो गया। गुरुदेव बताते थे कि प्रभु जी के संकल्प से ही पिता जी ने बहुत अच्छी बात प्रभु जी के लिए कही और कभी साथ न छोड़ने की बात कही। गुरुदेव का कहना था यह प्रभुजी के शक्तिपात का ही प्रभाव था जो पिता जी के मुख से दिव्य वाणी निकल रही थी अस्तु! कहने का तात्पर्य है शक्तिपात किसी भी व्यक्ति पर कहीं पर भी योगीराज कर सकते हैं। हमारे कई गुरुभाईयों ने, सिद्धयोग परिवार, श्री सिद्धगुफा परिवार, योगेश्वर गुरुदेव या श्री सिद्धगुफा संवाई धाम या ध्यान योग गोवर्धन आदि नाम से वाट्सएप बनाया हुआ है। आशा है इन सब के माध्यम से हम योग की यथार्थता को समझते हुए गुरुनिष्ठ रहकर ध्या योग परायण बने रहेंगे और अन्य साधकों को भी विशुद्ध योग मार्ग का ज्ञान देते रहेंगे। किसी जिज्ञासु ने कुछ प्रश्न

लिखकर मुझे भेजे हैं। यद्यपि मैंने अपने लेख में प्रकारान्तर से इनका उत्तर लिख दिया था। इनके प्रश्न मेरे सामने बाद में आये उनकी सन्तुष्टि के लिए ही प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ।

(1) प्रश्न है आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त की जाती है ?–सम्पूर्ण योग एवं ध्यान की साधना आत्मिक शक्ति को अर्जन करने के लिए ही होती है। जहाँ साधना से ज्ञान (सूक्ष्म जगत) का उदय होता है वहाँ शक्ति भी स्वतः प्रकट रहती हैं। यह दोनों युगपद् मिलते हैं इनके लिए अलग–अलग साधन नहीं करनी पड़ती। मन की एकाग्रता ही समस्त शक्तियों का आधार है। शक्ति के बिना आत्मज्ञान असंभव है। उपनिषद का वचन है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन को नहीं पा सकता। बल का अर्थ आत्मबल ही है। इसलिए **'नास्ति योगात् परं बलम्'** योग विद्या से बड़ा बल या शक्ति दूसरी नहीं है।

(2) आत्म ज्ञान की अनुभूति अन्तःकरण या चित्त में होती है। ध्यान योग के दृढ़तर अभ्यास हो जाने पर रजोगुण व तमोगुण रूपी मल के नष्ट हो जाने पर सत्य का प्रकाश होता है जिसे योग की भाषा में **'ऋतम्भरा प्रज्ञा'** कहते हैं इसी प्रज्ञा में सत्य का दर्शन होता है।

(3) जो योगी पूर्णता को या आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर चुका है उसके रोम–रोम से प्रकाश निकलता है। जब योगी किसी शिष्य पर शक्ति संचार करता है तो शिष्य के सिर पर हाथ का स्पर्श करता है। इससे हाथों से निकलने वाली प्राण शक्ति का प्रवाह शिष्य के अन्दर शक्ति का संचार कर देती है और उस शक्ति संचार से उसके अन्दर भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियाएँ भी शुरू हो जाया करती हैं। नाड़ी–शोधन जिनका हो चुका है वे समाधिस्थ हो जाया करते हैं चित्त प्रवाही नाड़ियों में अवरोध होने पर क्रियाऐं होती हैं।

(4) आत्मशक्ति योगी के मन और बुद्धि में वास करती है। मन और प्राण के समवेत प्रयोग से ये बाहर संचारित होती है और योगी अपने शिष्यों को कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ाते रहते हैं।

(5) आत्मिक शक्ति का ह्रास कई कारणों से होता है काम, क्रोध मोह से, रोग व द्वेष, विषयों के चिन्तन से प्राणों की गति अस्थिर हो जाती है जिससे आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि दादा गुरुदेव प्रायः कहते थे **'भाडे मिले पर चाँदे मिले'** अर्थात् शिष्य तो मिले किन्तु फूटे पात्र की तरह मिले। शक्ति देते रहो किन्तु साधक उनको सम्भाल कर नहीं रख पाते हैं। इसलिए शक्ति का पूर्ण संचय

रखना आवश्यक है।

(6) आत्मिक शक्तियाँ अनन्त हैं इनकी गिनती नहीं कर सकते। योग दर्शन के विभूतिपाद में पतजलि देव ने जिन शक्तियों का वर्णन किया है वे विभूति नाम से कही जाती हैं। ये विभूतियाँ योगी की शक्तियाँ हैं जो मन की एकाग्रता जन्य संयम की सिद्धि से प्राप्त होती हैं। इन विभूतियों के प्रकट होने पर योगी सर्वसमर्थ बन जाता है। विभूतियाँ योगी के निर्बीज समाधि में विघ्न रूप भी कही जाती हैं। किन्तु व्युत्थान समय में ये योगी की आत्म शक्ति के रूप में काम करती हैं। जो सिद्ध गुरु के नियन्त्रण में रहकर योग ध्यान करता है, यम नियमों का पालन करता है वह शक्ति का संचय करता है। गुरु कृपा से ही सब संभव है साधना करने पर अनुभूतियाँ तो होती ही हैं साधना कभी व्यर्थ नहीं जातीं। अनुभूतियाँ सर्वप्रथम मन के संकल्प–शक्ति की सिद्धि, वाक् सिद्धि आदि के रूप में व्यवहार में प्रकट होती है। ये योग के प्रथम चिन्ह के रूप में प्रकट होते हैं। योग के अनुभव हर किसी के सामने प्रकाशित न करने की आज्ञा योग शास्त्र की है **'भवेत् वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशिता'** प्रकट करने पर नष्ट भी हो जाती है। **'यस्तु क्रियावान सः पण्डितः'** जो क्रिया वान है वही योग का वेत्ता होता है। योग साधना में अभ्यास का महत्त्व अधिक है ये केवल चर्चा का विषय नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि साधक को योग से प्राप्त होने वाली शक्तियों का ज्ञान होना चाहिए। साधना का लक्ष्य सिद्धियाँ व शक्ति प्राप्त करना नहीं है यह तो साधक को ब्याज में स्वतः मिल जाती हैं। साधक का लक्ष्य है आत्म साक्षात्कार। सिद्धियों के विषय में लिखते हुए पतञ्जलि देव महाराज एक सूत्र में लिखते हैं–

"ता समाधावुपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः"

अर्थात् सिद्धियाँ चित्त वृत्ति निरोध रूप समाधि में तो विघ्न स्वरूप हैं किन्तु व्युत्थान काल में ये सिद्धियाँ हैं योगी की इच्छानुसार कार्य करती रहती हैं। ये योगी के अन्दर स्वतः ही वास करती हैं सहज ही अंग प्रत्यंग में रहती हैं। सदा रहती है। निरन्तर योगी के शरीर से बाहर निकलती रहती है और साधकों का कल्याण होता रहता है।

आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त होती है ?

एक योग जिज्ञासु ने कुछ प्रश्न लिखकर मुझे भेजे हैं। यद्यपि मैंने अपने लेख में प्रकारान्तर से इन का उत्तर पहले लिख दिया था इनका प्रश्न मेरे सामने बाद में आये उनकी सन्तुष्टि के लिये ही प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ।

(1) प्रश्न है आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त की जाती है ?

उत्तर–सम्पूर्ण योग एवं ध्यान की साधना आत्मिक शक्ति का अर्जन करने के लिये

ही होती है। जहाँ साधना से ज्ञान (सूक्ष्म जगत) का उदय होता है वहाँ शक्ति ही स्वतः प्रकट रहती हैं। यह दोनों युगपद् मिलते हैं इनके लिए अलग–अलग साधना नहीं करना पड़ती। मन की एकाग्रता ही समस्त शक्ति का आधार है। शक्ति के बिना आत्मज्ञान असंभव है। उपनिषद् का वचन है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन को नहीं पा सकता। बल का अर्थ आत्म बल ही है। इसलिये **''नास्ति योगात् परं बलम्''** योग विद्या से बड़ा बल या शक्ति दूसरी नहीं है। शक्ति प्राप्त करने के लिये सिद्धगुरु से उपदेश लेकर तत्परता से साधना में लग जाना चाहिए, शक्तियाँ स्वयं ही आयत् होती चली जाती हैं।

(2) आत्मज्ञान की अनुभूति अन्तःकरण या चित्त में होती है ?

उत्तर–ध्यान योग के दृढ़तर अभ्यास हो जाने पर रजोगुण व तमोगुण रूपी मल के नष्ट हो जाने पर सत्य का प्रकाश होता है जिसे योग की भाषा में **'ऋतम्भरा प्रज्ञा'** कहते हैं इसी प्रज्ञा में सत्य का दर्शन होता है।

(3) जो योगी पूर्णता को या आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर चुका है उसके रोम–रोम से प्रकाश निकलता है ?

उत्तर–जब योगी किसी शिष्य पर शक्ति संचार करता है तो शिष्य के सिर पर हाथ का स्पर्श करता है। इससे हाथों से निकलने वाली प्राण शक्ति का प्रवाह शिष्य के अन्दर शक्ति का संचार कर देती है और उस शक्ति संचार से उसके अन्तर भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियाऐं भी हुआ करती हैं। नाड़ी–शोधन जिसका हो चुका है वे समाधिस्थ हो जाया करते हैं चित्त प्रवाही नाड़ियों में अवरोध होने पर क्रियाऐं होती हैं।

(4) आत्म शक्ति योगी के मन और बुद्धि में वास करती है ?

उत्तर–मन और प्राण के समवेत प्रयोग से ये बाहर संचारित होती रहती है और योगी अपने शिष्यों को कल्याण के मार्ग पर कल्याण के पथ पर आगे बढ़ाते रहते हैं।

(5) आत्मिक शक्ति का ह्रास कई कारणों से होता है ?

उत्तर–काम, क्रोध, मोह से, राग व द्वेष से, विषयों के चिन्तन से प्राणों की गति अस्थिर हो जाती है जिससे आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि दादा गुरुदेव प्रायः कहते थे भांडे मिले पर चौदे मिले अर्थात् शिष्य तो मिले किन्तु फूटे पात्र की तरह मिले। शक्ति देते रहो किन्तु साधक उनको सम्भाल कर नहीं रख पाते हैं। इसलिये शक्ति का पूर्ण संचय रखना आवश्यक है।

(6) आत्मिक शक्तियाँ अनन्त हैं इनकी गिनती नहीं कर सकते ?

उत्तर–योग दर्शन के विभूति पाद में पतंजलि देव ने जिन शक्तियों का वर्णन किया

है वे विभूति नाम से कही जाती हैं। ये विभूतियाँ योगी की शक्तियाँ हैं जो मन की एकाग्रता जन्य संयम की सिद्धि से प्राप्त होती हैं। इन विभूतियों के प्रकट होने पर योगी सर्व समर्थ बन जाता है। ये विभूतियाँ योगी के निर्बीज समाधि में विघ्न रूप भी कही जाती हैं किन्तु इतर समय में ये योगी की आत्म शक्ति के रूप में काम करती है। **''ता समाधावुप सर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः''** जो सिद्ध गुरु के नियन्त्रण में रहकर योग ध्यान करता है वह नियमों का पालन करता है वह शक्ति का संचय करता है। गुरुकृपा से ही सब संभव है साधना करने पर अनुभूतियाँ तो होती हैं साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। अनुभूतियाँ सर्व प्रथम मन के संकल्प–शक्ति को दृढ़ करती हैं। संकल्प शक्ति की सिद्धि वाक सिद्धि आदि के रूप में व्यवहार में शरीर में ही प्रकट होती है। ये योग के प्रथम चिह्न के रूप में प्रकट होते हैं। योग अनुभव हर किसी के सामने प्रकाशित न करने की आज्ञा योग शास्त्र की है **''भवेत् वीर्य वती गुप्ता निर्वीया च प्रकाशिता''** प्रकट करने पर नष्ट भी हो जाती है। वस्तुतः योग अभ्यास गम्य है। **यस्तु क्रियावान सः पण्डितः** जो क्रियावान है वही योग का वेत्ता होता है। साधना से अर्जित शक्ति को संचित के रखने के लिए योगी को समाधि प्राप्ति के बाद भी यम–नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। यदि इनका पालन नहीं किया जाता है तो साधक शक्तियों का ह्रास भी कर देता है। सत्य संकल्प और अहिंसः आदि का पालन नहीं करेगा तो तुरन्त दूसरे का अनिष्ट हो जायेगा। योगी हरिहरानन्द जी ने एक ग्रामीण को उसकी छोटी सी गलती पर शाप दे दिया और वह वहीं ढेर हो गया था। ऐसे ही माता द्रोपदी देवी पर किसी ने कुदृष्टि डाली तो उन्होंने शाप दे दिया और उसका भी वहीं शरीरान्त हो गया। इस प्रकार से अपने मन, वाणी और इन्द्रियों को संयम में रखकर साधना करने पर ही योगी जल्दी लक्ष्य तक पहुँच जाया करता है। मन ही शक्तियों को अर्जित करने का साधन है और मन से ही इन शक्तियों का ह्रास भी हो जाया करता है। इसीलिए कहा जाता है **''मन एवं मनुष्याणाम् कारण बन्ध मोक्षयोः''** साधक का उत्थान और पतन मन पर निर्भर है।

(सम्पादकीय–जनवरी 2016)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

एकादश स्कन्ध के तीसवें अध्याय में यदुकुल संहार की कथा भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित को सुनाया है।

राजा परीक्षित ने पूछा–भगवन्! उद्धव जी के बदरीबन चले जाने के बाद द्वारिका में श्रीकृष्ण ने क्या लीला रची ? वे अपने दिव्य श्रीविग्रह की लीला का संवरण कैसे किया ? श्री शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित! भगवान श्रीकृष्ण ने सुधर्मा सभा में उपस्थित यदुवंशियों से यह कहा–श्रेष्ठ यदुवंशियों! द्वारका में भयंकर उत्पाद होने लगे हैं। ये महान अनिष्ट के सूचक हैं। अ% हमें यहाँ घड़ी–दो–घड़ी भी नहीं ठहरना चाहिए। स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े यहाँ से शंखोद्धार क्षेत्र में चले जायें और हम लोग प्रभास क्षेत्र में चलें। वहाँ हम लोग दानादि द्वारा महात्माओं का सत्कार करेंगे। सभी ने भगवान श्रीकृष्ण की बात का अनुमोदन किया। समुद्र पार करके रथ द्वारा प्रभास क्षेत्र पहुँचकर सभी ने मंगल कृत किये। शाप वशीभूत यादवों ने मैरेयक नामक तीव्र मदिरा का पान करके उन्मत्त हो गये। वे मूढ़ आपस में ही भयंकर युद्ध रत हो गये और एक दूसरे का नाश करने लगे। वे सभी भगवान की माया से मूढ़ हो रहे थे। अन्त में समुद्रतट पर लगी एरका नाम की घास जो ऋषियों के शाप के कारण लोहामय मूसल के चूरे से पैदा हुई थी, उसे उखाड़–उखाड़ आपस में मार–पीट करने लगे। जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि समस्त यदुवंशियों का संहार हो चुका, तब उन्हें सन्तोष हुआ कि पृथ्वी का बचा–खुचा भार भी उतर गया।

बलराम जी ने समुद्रतट पर बैठकर एकाग्रचित्त से परमात्मचिन्तन करते हुये अपने आत्मा को आत्मस्वरूप में स्थिर कर मनुष्य शरीर छोड़ दिया।

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम्।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि।।26.30.11

जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा बड़े भाई बलराम जी परमपद में लीन हो गये तब वे एक पीपल के पेड़ के नीचे–धरती पर बैठ गये। उस समय उन्होंने चतुर्भुज रूप ध ारण कर रखा था। उस समय भगवान अपनी दाहिनी जाँघ पर बायाँ चरण रखकर बैठे हुये थे। लाल तलवा रक्त कमल के समान दमक रहा था।

परीक्षित्! जरा नाम का एक बहेलिया था। उसने मूसल के बचे हुये टुकड़े से अपने बाण की नोक बना ली थी। उसे दूर से भगवान का तलवा हरिण के मुख सा प्रतीत हुआ। उसने उसी बाण से बींध दिया। जब पास आया तो देखा ये तो चर्तुभुज पुरुष हैं। वह डर के मारे भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। वह बोला मधुसूदन मैंने अनजाने में अपराध किया है, मेरा अपराध कृपा कर क्षमा करें। प्रभो! ब्रह्मा जी, रुद्र आदि आपकी योगमाया को नहीं समझ पाते फिर मुझ सा पापयोनि वाला क्या समझ पायेगा ?

यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो
रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये।
त्वन्माययापिहितदृष्टय एतदञ्जः
किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः।। 38.30.11

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–हे जरे! तू डर मत, यह तूने मेरे मन का काम किया है। जा, मेरी आज्ञा से तू स्वर्ग में निवास कर, जिसकी प्राप्ति पुण्यवानों को होती है। उसने तीन बार भगवान की परिक्रमा की, नमस्कार किया और विमान पर सवार होकर स्वर्ग को चला गया।

श्रीकृष्ण का सारथी दारुक भगवान को खोजता उनके पास जब पहुँचा तो देखा–भगवान श्रीकृष्ण पीपल के पेड़ के नीचे आसन लगाये बैठे हैं। असह्य तेज वाले आयुध मूर्तिमान होकर उनकी सेवा में संलग्न हैं। वह प्रेमातिरेक में रोता हुआ रथ से कूदकर भगवान के चरणों में गिर पड़ा। बोला–प्रभो! आपके चरण कमलों का दर्शन न पाकर न मुझे दिशाओं का ज्ञान है और न हृदय में शांति है।

भगवान शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! जिस समय दारुक कह ही रहा था कि उसके सामने ही भगवान का गरुड़ध्वज रथ घोड़ों के साथ आकाश में उड़ गया। उसके पीछे–पीछे भगवान के दिव्य आयुध भी चले गये। यह सब देख दारुक के आश्चर्य की सीमा न रही। तब भगवान ने कहा–दारुक! अब तुम द्वारिका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियों के पारस्परिक संहार, भैया बलराम जी की परम गति और मेरे स्वधाम गमन की बात कहो। उनसे कहना कि अब तुम लोगों को अपने परिवार वालों के साथ द्वारका में नहीं रहना चाहिए। मेरे न रहने पर समुद्र उस नगरी को डुबो देगा।

'द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः।
मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति।।
47.30.11

सब लोग अपनी–अपनी धन–सम्पत्ति, कुटुम्ब और मेरे माता–पिता को लेकर अर्जुन के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ चले जायें। दारुक! तुम मेरे द्वारा उपदेशित धर्म का आश्रय लो और ज्ञाननिष्ठ होकर सबकी उपेक्षा कर दो तथा इस दृश्य को मेरी माया की रचना समझकर शांत हो जाओ।

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः।
मन्मायारचना मेतां विज्ञयोपशमं व्रज।।

49.30.11

भगवान् का यह आदेश पाकर दारुक उनकी परिक्रमा की उनके श्री चरणों में गिर–गिर कर बारम्बार प्रणाम किया और उदास मन से द्वारिका के लिये चल पड़ा।

भगवान शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! दारुक के चले जाने पर ब्रह्मा जी, शिव–पार्वती, इन्द्रादि लोकपाल, प्रजापति, ऋषि, मुनि, पितर, सिद्ध, गन्धर्व–विद्याधर, नाग–चारण, यक्ष–राक्षस आदि भगवान श्रीकृष्ण के परमधाम प्रस्थान को देखने वहाँ आये। वे भक्ति भाव से भगवान पर पुष्पों की वर्षा करते हुये उनके लीलाओं का गान कर रहे थे।

सर्व व्यापक भगवान श्रीकृष्ण ने अपने विभूति स्वरूप देवताओं को देखकर अपने आत्मा को स्वरूप में स्थित किया और कमल के समान नेत्र बन्द कर लिये।

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत्।।

5.31.11

❀❀❀❀❀❀❀

सलाह तो अनेक प्राप्त करते हैं, किन्तु उससे लाभ उठाना बुद्धिमानों को ही आता है।

–साइरस

"ॐ रामलाल प्रभवे नमः"

लीला धारी की लीलाऐं

—जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003 एवं 011—35699425

गताँक से आगे—

प्रातः स्मरणीय गुरुदेव भगवान अनन्त विभूषित योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी दिव्य लेखनी से हमें अवगत कराते रहे हैं कि मेरे सद्गुरु देव (हमारे आप के दादा गुरुदेव) अखिल ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की दिव्य—चमत्कारी लीलाओं को, जिन्हें मैंने स्वयं देखा है तथा निजानुभूति से जन हितार्थ लेखनीबद्ध प्रचार प्रसार करने का प्रयास है। इन दिव्य एवं अद्भुत लीलाओं का पठन—पाठन करने वाले जिज्ञासुओं की दिव्य कर्म योगी श्री प्रभु जी के श्री चरण कमलों में दृढ़ निष्ठा होगी तथा वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

लीलाऐं—

आहा! कुएँ में गंगा जी—एक पुण्य पर्व के दिन सवाई के लोग धड़ाधड़ श्री गंगा जी स्नान करने जा रहे थे। भक्त गुलाब सिंह ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि प्रभु जी! गंगा स्नान की इच्छा वाले लोग चले गए। किन्तु हम भी रह गये और आप भी रह गये। श्री प्रभु जी हंस पड़े और कहने लगे—हाँ भाई, अब तो रह ही गए। किन्तु कोई बात नहीं, जाओ तुम इस कुएँ (यह कुआँ अब भी श्री सिद्ध गुफा सवाई में दर्शनार्थी के साक्षात् मूलश्रोत रूप में विद्यमान है) में घुसकर स्नान कर आओ। उन्होंने आज्ञानुसार कुएँ में प्रवेश किया और जल स्पर्श होते ही श्री गंगाजी के दर्शन होने लगे। इन भक्तों ने देखा कि जो लोग पर्व स्नान के लिए गए थे वे अभी यहाँ पहुँचे ही नहीं हैं और हम गंगा जी के पवित्र प्रवाह में स्नान का आनन्द लूट रहे हैं। मकर वाहिनी भगवती अपना कर कमल उठा कर आशीर्वाद दे रही है कि—"बेटा तुम धन्य हो। गुरु कृपा से तुमने पर्व लाभ किया।" जब ये लोग स्नान कर ऊपर आए तो पूर्ववत् कुआँ ही दिखाई देने लगा। ऐसे सद्गुरु देव भगवान को कोटिशः नमन।

कृपा की चवन्नी—सवाँई गांव के ठा. जोहरी सिंह का जीवन अत्यन्त क्लेशित रहा करता था। कुटुम्ब के पालन—पोषण का कोई उपाय नहीं था। सौभाग्यवश श्री प्रभु जी के श्री चरणों में आने की लगन बनी रहा करती थी मगर किसी प्रकार की प्रार्थना

करने का साहस नहीं होता था। एक दिन अगाध करुणा सागर श्री प्रभु जी ने स्वयं रीझ कर उसे आवाज देकर बुलाया कि जोहरी सिंह चिन्ता मत करो। यह चवन्नी ले जाओ, तुम्हारे सब कार्य यह कर देगी। जोहरी सिंह, श्री प्रभु जी से चवन्नी प्रसाद को पाकर ऐसा निहाल हो गया कि आज तक उनका घर सब प्रकार से परिपूर्ण है। महासिद्धियों के स्वामी श्री प्रभुजी की दी हुई उस चवन्नी को परिवार अभी तक सम्भाल कर रखे हुए है। जय श्री प्रभुजी.....!

चमत्कारी माला—सँवाई के ठा. चन्दन सिंह का मन सर्व समर्थ श्री प्रभु जी के श्री चरण कमलों में अनन्य निष्ठा व प्रेम से परिपूरित रहा करता था। घर में अर्थाभाव से समय कठिनता से व्यतीत होता था। काफी प्रयत्न करने पर भी कहीं नौकरी नहीं मिली। वे इसी चिन्ता से खिन्न निराश बैठे थे। अपने अनन्य निष्ठ बालक की यह स्थिति देख कर आशुतोष श्री प्रभु जी हँसे और अपने गले से एक माला उतार कर चन्दन सिंह को पहना दी और कहा—"बेटा जाओ, जब तक यह माला तुम्हारे साथ रहेगी, तुम्हारे सभी कार्य सफल होंगे।" दूसरे दिन वह उस माला को पहन करके नौकरी के लिए किसी ओफिसर से मिलने गया तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह ओफिसर पहले से ही उसका इन्तजार कर रहा था। ओफिसर ने बड़े आदर से कहा—आओ और अपना कार्य शुरू करो। श्री प्रभु जी की कृपा से चन्दन सिंह के सभी साध्य—असाध्य कार्य पूर्ण हुए। उसने माला कई वर्षों तक अपने पास रखी और श्री प्रभु जी के अभय चरण कमलों का स्मरण करते रहे। धन्य हैं ऐसे प्रभु जी।

विभूति मेरे प्रभु की कमाल करती

चार पुत्रों का वरदान—सँवाई के ठाकुर दास श्री प्रभु चरणों में बड़े प्रेम मग्न रहा करते थे। उनके दो विवाह हो चुके थे और दोनों ही पत्नियाँ मर चुकी थीं। वह सन्तान न होने के कारण रोता रहता था। व्याधी निनाशक श्री प्रभु जी ने एक दिन उसे रोता हुआ देख लिया तब अपने पास बुला कर कहने लगे—"ठाकुर दास रोते क्यों हो ? ये विभूति खाओ, अभी तुम्हारी एक शादी और होगी। उस स्त्री से तुम्हें चार पुत्र पैदा होंगे।" विभूति खाने पश्चात् जल्दी ही उसकी शादी हो गई और चार लड़के पैदा हुए।

गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के सँवाई आश्रम रहने पर ईसवी 1943–44 में ठाकुर दास ने प्रार्थना की थी कि श्री प्रभु जी के इन चार गुलामों को अपने जान कर आश्रम की किसी भी सेवा के लिए बुला लेना। ये मेरे नहीं, बाबा के हैं। बाबा के ही रहेंगे। यह कहकर वयोवृद्ध ठाकुर दास श्री प्रभु जी के कृपामय चरणों का स्मरण कर गदमग हो कर चुप हो गया। जय जय श्री प्रभु जी।

श्री प्रभु जी एक–शरीर अनेक

एक बार सँवाई के भक्तों ने श्री गंगा जी के पुण्य पर्व पर गंगा स्नान के लिए श्री प्रभु जी के साथ चलने का आग्रह किया। किन्तु श्री प्रभु जी ने कहा–कि भाई तुम लोग जाओ, जब हमारी अभिरुचि होगी तो हम चले आऐंगे। वे लोग गंगा जी पहुँच गए तो वहाँ बड़ा आश्चर्य देखा कि श्री प्रभु जी गंगा स्नान पर उन सबके साथ रहे और अन्य कई लोगों से मिले।

इधर, श्री सिद्ध गुफा के सामने, कदम के वृक्ष के नीचे बने अखाड़े में सँवाई के बच्चों को कुश्ती लड़ाते रहे। यही नहीं अपितु–

अलीगढ़ के स्टेशन पर श्री प्रभु जी ने एक भक्त कर्ण सिंह को गाड़ी के नीचे कुचले जाने से उसी दिन बचाया। जब कर्ण सिंह सँवाई में श्री प्रभु चरणों में आया तो उसने कहा–"महाराज! आप तो अलीगढ़ से मेरे साथ गाड़ी में नहीं आए, सो अब आप कौन से वाहन से इतनी जल्दी यहाँ आए हैं ?"

जब गंगा स्नान वाले वापिस आए तो श्री प्रभु जी के स्थान–स्थान पर मिलने की बातें करने लगे। जो बच्चे उस दिन अखाड़े में रहे, वह कहने लगे कि–श्री प्रभु जी तो पर्व वाले दिन हमें कुश्ती लड़ाते रहे। इन आश्चर्य की बातों का रहस्य कोई नहीं जान सका।

विभूति में सरस्वती–ऐलादपुर निवासी पं. रामचरण मूँकवत् श्री प्रभु चरणों में श्री सिद्ध गुफा पर बैठा रहा करता था। शरीर से जो बन पाता वह सेवा कर लेता था मगर उस की बुद्धि का बिल्कुल भी विकास नहीं था। एक दिन उस दीन ब्राह्मण को देख कर करुणा–निकेतन, दीन बन्धु श्री प्रभु जी ने कहा–"यह विभूति पास खा ले। आज से तू पंडित माना जाएगा और आसपास के समुदाय में पूर्ण सम्मानित होगा। इसी से अर्थ लाभ भी होगा।" सर्व समर्थ्य, विश्व नियन्ता श्री प्रभु जी के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी अमोघ थी। पं. रामचरण धन–धान्य से परिपूर्ण हो गया। वह ऊँचे पंडितों में स्थान पा गया। कैसे दयालु हैं श्री प्रभु जी। बार बार प्रणाम।

श्री प्रभु जी का आकाश गमन

सँवाई में श्री प्रभु जी चरणारविन्द में लोगों का आकर्षण दिन–दिन बढ़ता ही जा रहा था। लोगों के मनचाहे काम बन रहे थे। सभी की हार्दिक इच्छा थी कि सर्व सिद्ध शक्तिदाता प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के कृपामय चरण कमलों से कभी बिछोह न हो.....। एक दिन त्रिकाल दर्शी श्री प्रभु जी ने आज्ञा दी कि सभी लोग हमारे पास से

चले जाऐं क्योंकि हम श्री सिद्ध गुफा में जा कर समाधि लगाना चाहते हैं। संशय युक्त लोग जाना नहीं चाहते थे। यह देख श्री प्रभु जी ने कहा कि भाई इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हो ? लो, हम गुफा के अन्दर चले जाते हैं और तुम बाहर ताला लगा जाओ। किन्तु कोई भी ताला खोल कर अन्दर न आने पाए। हमारी समाधि में विघ्न न हो। श्री प्रभु जी का यह आदेश सुन कर लोगों ने अपना अहोभाग्य समझा कि त्रिलोकीनाथ जी यहीं समाधि लगा रहे हैं। लोगों ने गुफा पर ताला लगा दिया और कुछ भक्त गुफा के बाहर पहरे के रूप में रहते रहे।

श्री प्रभु जी गुफा में जाकर समाधिस्थ हो गए और लगभग अर्द्धरात्रि के समय अणिमा के द्वारा अपने शरीर को अणुवत बना कर बाहर निकल आए और आकाश मार्ग से हरिद्वार की ओर चले। उस समय आश्विन का महिना था अतः रात्रि में लोग अपने खेतों में हल जोत रहे थे। उन्हीं में से परम भाग्यशाली "सूखा" नामक धीमर भी हल जोत रहा था। उसकी दृष्टि आकाश की ओर गई तो देखा यह क्या बला आ रही है ? वह भयभीत हो गया कि यह कोई भूतप्रेत कोई आफत है अतः हल छोड़ दिया, सोचा दौड़कर घर चला जाऊँ। किन्तु भवभयहारी, दीनबन्धु जी उसकी दीन दशा सहन न कर सके और ठहर कर बोले–"अरे सूखा तू हमें नहीं पहचानता, हम गुफा वाले बाबा हैं, जिनके पास तू सैंकड़ों बार आया–जाया करता है। अब गाँव में जाकर हमारी हिमालय चले जाने की बात तुम किसी को कहना नहीं।"

श्री प्रभु जी तो पुनः आकाश मार्ग से हरिद्वार को चले गए। उधर भयभीत सूखा से न रहा गया। पसीने झाड़ता हुआ गाँव की तरफ भागा और स्पष्ट कर दिया कि भाई आज गुफा वाले बाबा आकाश मार्ग से हिमालय को चले गए हैं। गाँव के लोग तत्काल गुफा को दौड़े। जो लोग गुफा की रखवाली कर रहे थे, सुन कर असमंजस में पड़ गए और तुरन्त गुफा का ताला खोला। किन्तु आश्चर्य कि भीतर से श्री प्रभु जी ने कुण्डी लगाई हुई थी। अब क्या किया जाये ....? तरह–तरह के विचार–विमर्श पश्चात् यही निश्चय हुआ कि एक दीवार तोड़कर गुफा में घुसा जाये तभी तथ्य का पता चल सकेगा। अतः प्रातः सूर्योदय के बाद दीवार को तोड़ कर भक्त डा. ज्वाला प्रसाद धीरे–धीरे निस्तब्ध भाव से पैरों को दबा कर गुफा में घुसे। अन्दर जाकर देखा श्री प्रभु जी वहाँ नहीं थे। केवल मात्र एक लोटा और एक पुस्तक रखी थी। डा. ज्वाला प्रसाद के मुख से सभी प्रेमियों ने जब यह सुना तो अत्यन्त आर्तभाव से फूट–फूट कर रोने लगे और प्रार्थना की कि हे योगेश्वर! हे प्रभो आप दीनों की तरह हमें छोड़कर चले गए। हम आपके बच्चे हैं। अनाथों की तरह मारे मारे फिरेंगे। हे कृपा नाथ हमें दर्शन दो....। उसी

समय गुफा से आवाज सुनाई दी "भाई! तुमने हमारे साथ जिद्द की अतः ऐसा हुआ। डरो मत– हम लगभग 12 वर्ष बाद फिर आऐंगे, उस समय पहचान सको तो पहचान लेना।" फिर सभी भक्त श्री प्रभु जी का गुणानुवाद बतीयाते हुए लौट चले।

इस प्रसंग को निम्नलिखित शब्दों में भी गाया गया है–

प्रभु जी तुम्हें बार–बार बलिहारी.....

(1) प्रभु जी ने मन में ठानी–हम हिमालय जाऐंगे,
मिलेंगे जो जो योगी–भोगी–सारे दीक्षा पाएंगे,
भक्तों में हल चल मचगी–बाबा कहीं पै जाऐंगे,
गुलाब भक्त को आगे करके–ओ.....ओ.....ओ.....
भक्त गुलाब को आगे लेके–करी प्रार्थना भारी। प्रभु जी.....

(2) गुफा के अन्दर लला हमको–लम्बी समाधी लगाना है,
बाहर से ताला बन्द करो–तुमको धीरज धरना है,
अणीमा से बाहर निकले–आकाश मार्ग अपनाया है,
सूखा धीमर हल चलावे–ओ....ओ....ओ....
सूखा धीमर हल चलावे–जान लभी में आई। प्रभु जी .....

(3) विधाता जी भूतल उतरे–मैं गुफा वाला बाबा हूँ,
नहीं कहना गाँव में जाकर–मैं हिमालय जाता हूँ,
सूखा भाग–भाग चिल्लाया–मैं बाबा का दर्शन पाया हूँ,
भक्त ज्वाला नीचे उतरा....ओ....ओ....ओ....
भक्त ज्वाला नीचे उतरा–गुफा थी खाली पाई। प्रभु जी .....

(क्रमशः)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

मंत्र चिन्तामणि

प्रेषक–कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

संत धरा पर लोक कल्याण का कार्य करने हेतु अवतरित होते हैं। वह अपना कार्य गुप्त रूप से करते हुए धराधाम से स्वधाम पधार जाते हैं। ऐसे में उन्हें पहचानना सामान्य लोगों के लिए कठिन होता है। इस दृश्य जगत में कोई कार्य असम्भव नहीं है। लेकिन इसके लिए श्रद्धा और विश्वास बहुत महत्वपूर्ण है। शास्त्रों में कहा गया है कि–श्रद्धा माता की तरह से रक्षा करती है। जिसने माता को समझ लिया वह कल्याण का भागी अवश्य हो जाता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में माता ही प्रथम गुरु है। ऐसे ही संतों में नारद जी भी हैं। जो देवलोक से लेकर पृथ्वी लोक के कल्याण हेतु विचरण करते हैं। पापी जीवों को भी चेताते हैं। ऐसा हमारे शास्त्रों में अनेकों कथाएं हैं। उनकी एक कल्याणकारी कथा पाताल खण्ड में है। जिससे सद्शिक्षा प्राप्त होती है।

एक समय की बात जब नारद जी भगवान शिव के पास आये भगवान उस समय यमुना जी के पुलिन पर बैठे थे। नारद ने भगवान के चरणों में प्रणाम करके कहा–प्रभो मुझे आप सर्वेश्वर परमात्मा हैं। मुझे योगेश्वर भगवान कृष्ण मंत्र का उपदेश करें। यदि आप मुझे अधिकारी समझते हो तो लोक कल्याण हेतु आप अवश्य ही मुझे मंत्र उपदेश कर कथा श्रवण भी करावें। मेरे मन में बहुत जिज्ञासा है। इसको आप ही शान्त कर सकते हैं। नारद की बात सुनकर भगवान शिव बड़े प्रमुदित मुद्रा में कहा–नारद तुम लोक कल्याण करने हेतु ऐसी जिज्ञासा लेकर आये हो। इसलिए मैं तुम्हें **"मन्त्र चिन्तामणि"** का उपदेश अवश्य दूँगा। यद्यपि यह तो अत्यन्त गोपनीय है। फिर भी इसका श्रवण तुम्हें कराऊँगा। भगवान भूतनाथ बोले–नारद श्री कृष्ण के दो मन्त्र अत्यन्त उत्तम हैं। मन्त्र चिन्तामणि युगल द्वय और पंचपदी ये दोनों के पर्याय हैं। इसमें प्रथम पद **गोपीजन** द्वितीय **वल्लभ** तृतीय **चरणान्** चतुर्थ **शरणं** पंचम **प्रपद्ये।** इस प्रकार यह मंत्र **"गोपी जन वल्लभ चरणान् शरणं प्रपद्ये"** है। इसी का नाम मंत्र चिन्तामणि है। नारद जो भी श्रद्धा या अश्रद्धा से एक बार भी इस पंचपदीय मंत्र का जप कर लेता है। वह श्रीकृष्ण के प्यारे भक्तों का सानिध्य प्राप्त कर लेता है। इसमें बिल्कुल संदेह नहीं है। उसमें देशकाल का बहुत नियम नहीं है। इस मंत्र के सब अधिकारी हैं। चाहे पापात्मा हो या पुण्यात्मा। नारद यदि सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण में उनकी भक्ति है तो वे सब के सब अधिकारी हैं। लेकिन जो सुनना नहीं चाहता हो तथा जिसके हृदय में गुरु के प्रति सेवाभाव न हो उसे यह मंत्र नहीं बताना चाहिए। इस मंत्र का ऋषि मैं (भगवान शंकर) स्वयं हूँ। वल्लवी वल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं। प्रिया सहित भगवान गोविन्द के दास्यभाव की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। श्रद्धा से अर्थ भावना के साथ

जपने से कल्याण अवश्य ही होता है। अब मंत्र का ध्यान सुनो। भगवान श्रीकृष्ण अपनी प्रियाजू के साथ वृन्दावन में कल्पवृक्ष के मूल भाग में रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान हैं। उनका विग्रह मेघ के समान अत्यन्त सुन्दर है। पीताम्बर धारण किये हुए हैं। गले में वनमाला तथा मस्तक पर मोर मुकुट शोभायमान है। चंचल नेत्रों को इधर–उधर घुमाने से मुख मण्डल की शोभा अद्वितीय दिखती है। ललाट पर कुमकुम का चन्दन लगा है। दोनों कानों में कुण्डल प्रातः कालीन सूर्य के समान अत्यन्त सुन्दर दिखता है। इस प्रकार सारे अंग उत्तम आभूषणों से सुशोभित हो रहे हैं। भगवान क्रीड़ा रस के आवेश में चंचल दिखते हैं। वे अपनी प्रिया को सदैव प्रसन्न रखते हैं। स्वयं अधरों की मुसकान से भक्तों का कल्याण करते रहते हैं। ऐसे भगवान कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। सखियाँ चवर और पंखे को डुलाकर शीतलता प्रदान कर रहे है।

नारद भगवान की आह्लादकारी शक्ति राधा जी अपनी अन्तरंग विभूतियों से प्रपंच का गोपन करती हैं। इसीलिए उन्हें **गोपी** कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की आराधना में सदैव तन्मय रहती हैं। इसलिए वे **राधिका** कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होने से वे ही परा देवता एवं लक्ष्मी स्वरूपा है। श्रीकृष्ण के आह्लाद का मूर्तिमान स्वरूप होने के कारण मनीषीजन उन्हें आह्लादिनी शक्ति कहते हैं–

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवताः।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लाद स्वरूपिणी।।
ततः सा प्रोच्यते विप्रहलादितीलि मनीषिभि।
तत्कला कोटि कोट यंशी दुर्गाद्यास्ति गुणालिकाः।।
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः।
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम्।।
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः शक् इयं शची।
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः।।
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विनाताभ्यां न किंचन।
चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत।।
इत्थं सर्वतयोरेव विभूतिं विद्धि–नारद।
न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि।।

इसलिए हे नारद जीव को श्री राधा और श्रीकृष्ण के युगल चरण ही जगत में शरण देने वाले है। मैं अत्यन्त दुःखी जीव हूँ अतः हे प्रभो आपका आश्रय लेता हूँ। आपकी शरण में पड़ा रहूँ। इस संसार में मेरा कुछ भी नहीं है। आपकी कृपा ही हमारे कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करने वाली हो। इस प्रकार प्रत्येक साधक को अहर्निश उस **चिन्तामणि** मंत्र का जप और चिन्तन करते रहना चाहिए।

ध्यान क्यों ?

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम.ए.

योग के पाँच साधन बहिरंग साधन हैं और तीन अंतरंग साधन हैं। बहिरंग साधन यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार शरीर के बाह्य व्यापारों को व्यवस्थित करने के साधन हैं। विज्ञानभिक्षु ने योग सार संग्रह नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि **'पंचांगनां प्रायशो देह प्राणेन्द्रिय संस्कार रूपत्वात्।''** उपरोक्त योग के पाँचों बहिरंग साधन–देह, प्राण, इन्द्रिय और संस्कार रूप हैं। धारणा, ध्यान, समाधि योग के आश्रय चित्त के संस्कारों से संबंधित अन्तरंग साधन हैं। असम्प्रज्ञात योग के लिए ध्यान और समाधि भी बहिरंग साधन हो जाते हैं अर्थात् ध्यान के द्वारा चित्त के संस्कारों का परिष्कार होता है। जो भी शुभाशुभ कर्म हम करते हैं, उनका सूक्ष्म रूप संस्कार के रूप में चित्त में संचित होकर हमारे प्रारब्ध को तैयार करता है। प्रारब्ध के फलस्वरूप हमारा जन्म–मरण, जाति, आयु और सुख–दुःख का भोग पैदा होता रहता है। बाहरी सारे उपाय पेड़ के पत्ते और शाखाओं को छू पाते हैं। ध्यानयोग के द्वारा संस्कार–चक्र के मूल का ज्ञान होता है और संचित संस्कार भोगोन्मुख बनाकर प्रारब्ध को शिथिल और सूक्ष्म बनाकर भोग–काल और भोग–देश को सीमित बनाया जा सकता है। प्रारब्ध का क्षय ध्यानयोग से ही होता है। इसका विस्तार से विवेचन आगे करेंगे।

ध्यान के द्वारा परम सत्ता का साक्षात्कार होता है। वैज्ञानिक उपायों से भौतिक पदार्थों की सत्ता का ही ज्ञान हो पाता है। देश, काल या ऊर्जा के स्वरूप का बोध होने से सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता। ये भौतिक पदार्थ पौद्गलिग सत्तायें हैं। जितने भी पदार्थ दो के संयोग से बने हैं या आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त के दायरे में आते हैं अर्थात् जिनका अस्तित्व एक–दूसरे पर निर्भर करता है, वे सब भौतिक पदार्थ हैं। भौतिक पदार्थों के ज्ञान से सत्य का ज्ञान नहीं होता। वैज्ञानिकों का अणु और परमाणु तथा उसके विखण्डन से उद्भूत ऊर्जा का ज्ञान प्राप्त कर आविष्कारों के क्षेत्र में चमत्कार पैदा कर दिया, किन्तु फिर भी वे सत्य को नहीं जान पाये। अभी ब्रह्माण्ड उनके लिए रहस्य बना हुआ है। इन उपलब्धियों से वे जीवन में शान्ति प्राप्त नहीं कर पाते। जो सत्य को उपलब्ध हो जाता है, वह शान्ति–लाभ कर पाता है। ध्यानयोग द्वारा मन और प्राण की एकता स्थापित होती है, जिससे योगी प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्त, कर्ता और भोक्ता की अनुभूति से मुक्त केवली व्याप्त सत्ता का अनुभव करता है। मिथ्या

दृष्टि समाप्त होकर जीवन में सम्यक् दृष्टि का विकास होता है। सत्य के उपलब्ध होने पर हमारे दुःखों का आत्यन्तिक नाश होता है। सम्यक् दृष्टि और सत्यानुभूति परस्पर संबद्ध स्थिति है। गीता में स्थित प्रज्ञ के लक्षणों में सम्यक् दृष्टि या सत्य को उपलब्ध होने की स्थिति का निरूपण है।

प्रजहाति यदा कामा–
न्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः,
स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

–गीता 2/55

ध्यानयोग से चरम सत्ता आत्मा का बोध होता है, जिससे मन की सारी कामनायें–प्रियता और अप्रियता सुख–दुःखात्मक अनुभूतियाँ विलीन हो जाती हैं और केवल शुद्ध ज्ञान रह जाता है। प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्त होना ही भोक्ता–भाव से मुक्त होना और सत्य को जानना है। सत्य को जानने वाला ऋषि, आप्त और यथार्थ वक्ता होता है। उस स्थिति में पहुँचकर जब अस्मितानुगत समाधि में ऋतम्भरा–प्रज्ञा' का उदय होता है तो जो भी अनुभूति होती है, वह संवेदना रहित विशुद्ध सत्य की अनुभूति होती है। उस स्थिति में ही सिद्धान्त का निरूपण किया जा सकता है। वे सिद्धान्त सब देश और सभी कालों के लिए सत्य होते हैं, बल्कि वे सिद्धान्त मानव मात्र का कल्याण करते हैं। ऋतम्भरा–प्रज्ञा प्राप्त पूर्व ऋषियों ने शास्त्रों में जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया है वे आज भी उतने ही सत्य हैं और आगे भी रहेंगे। आप्त–पुरुषों की भविष्यवाणी संवेदन रहित यथार्थानुभव पर आधारित होने पर सत्य घटित होती है। जो मन के दायरे में रहते हैं और अपने मनमाने ढंग से सिद्धान्त निरूपण या भविष्यवाणी कर देते हैं, वह समय की कसौटी पर खरी नहीं उतर पाती। ऐसे लोग ही पाखण्डी कहे जाते हैं। योग–दर्शन के प्रमाण निरूपण प्रकरण में आगम प्रमाण के प्रसंग में व्यासदेव जी महाराज लिखते हैं–

शब्दात्तदर्शविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः। यस्याश्रद्धेयार्थो वक्ता न द्रष्टानुमितार्थः स आगमः प्लवते मूलवक्तरि तु दृष्टानुमितार्थो निर्विप्लदः स्यात्।

–योग–दर्शन 1/7

तत्वदर्शी ऋषियों के अन्तःकरणों में समाधि अवस्था में जो ज्ञान शब्द रूप से उपस्थित हुआ, वह वेद आगम प्रमाण है तथा यथार्थ बोध प्राप्त ऋषियों के शब्द भी शब्द प्रमाण माने जाते हैं। जो ज्ञान यथार्थ बोध और यथार्थ दृष्टि से समुद्भूत नहीं होता, वह मनगढ़न्त

शास्त्र झूठा पड़ जाता है। जो ऋतम्भरा प्राप्त ऋषियों के अंतःकरण में सच्चिदानन्द की वाणी का शब्द रूप ज्ञान प्राप्त होता है वह सदा सत्य होने के कारण मानव का कल्याण करता है। इसलिए कहा जाता है कि शास्त्र के निर्देशों का पालन करने में ही कल्याण है। शास्त्र को प्रमाण मानकर हिताहित का निर्णय करना चाहिए–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।

इस प्रकार सत्य का साक्षात्कार ध्यान के परिपक्व होने पर सम्प्रज्ञात समाधि में समाधि की वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मितानुगत स्थितियों में मधुमती, मधुप्रतीका, विशोका और संस्कारशेषा भूमिकाओं पर क्रम से होता जाता है और धर्ममेघ–समाधि की पराकाष्ठा है, जहाँ सत्य का साक्षात्कार होता है। इसे योग की भाषा में विवेक–ख्याति की अवस्था कहा जाता है। तंत्रों में इसे प्रसंख्यान स्थिति कहा गया है। संप्रज्ञात योग में प्रकृति का समस्त सत्य ज्ञात हो जाता है, यह सम्यक् ज्ञान की अवस्था है। सम्प्रज्ञात की व्युत्पत्ति इसी अर्थ को उद्घटित करती है–

सम्यक् प्रजायते साक्षात्क्रियते ध्येय–मस्मिन् इति।

(नागोजी भट्टकृत योगसूत्र 1/2 भाष्य)

नागोजी के मत में–विवेक–ख्याति की अवस्था में अनात्मत्व का साक्षात्कार होने से उससे भी वैराग्य होकर असम्प्रज्ञात समाधि में सभी वृत्तियों का समूलोन्मूलन होता है और योग आत्मस्थ होकर पूर्ण सत्य में समाहित हो जाता है, निर्बीज समाधि यही होती है। निर्बीज का अभिप्राय है–

बीजस्य संस्कारस्य तत्वज्ञानपर्यन्त–शेषो दाहात्।

–(नागेश)

तत्वज्ञान होने तक बुद्धि में सतोगुण के जो संस्कार और प्रारब्ध कर्मों के भोग के संस्कारों का समूलोन्मूलन निर्विकल्प समाधि में हो जाता है, फिर सुख–दुःख, जन्म–मरण सबसे तलाक हो जाता है। इस तलाक को ही शास्त्रीय भाषा में मोक्ष कहा गया है। ज्ञान से प्रारब्ध कर्मों का भोग होने के पश्चात् मोक्ष होता है। कुम्हार जिस प्रकार अपने डण्डे से चाक को चला देता है तो डण्डे के हटाने के बाद भी जब तक उसमें डण्डे से घुमाने की शक्ति का संस्कार शेष रहता है, तब तक चक्र घूमता रहता है। इसी प्रकार सम्यक् ज्ञान होने पर प्रारब्ध का जब तक क्षय नहीं होता तब तक शरीर धारण कर सुख–दुःख भोगना पड़ता है। लेकिन इस भोग में नया कर्माशय नहीं बनता। केवल प्रारब्धक्षय का निवृत्ति प्रधान कर्माशय बनता है और प्रारब्ध क्षय के साथ दीपक से रुई जलने पर दीपक भी जिस तरह शान्त हो जाता है उसी प्रकार आत्मा का साक्षात्कार हो जाने के

बाद सभी प्रकार के कर्म और संस्कार भोग नष्ट हो जाते हैं। गीता में भी कहा है–

''ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।'' *–गीता 4/37*

अर्थात् ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है।

ध्यान के द्वारा हमारी संवेदनायें शुद्ध हो जाती हैं। ध्यान के बिना हम जो कुछ देखते हैं, उसमें हमारे मन और बुद्धि के पूर्वाग्रह होते हैं। जैसे किसी व्यक्ति से मुलाकात करने से पहले ही उसके बारे में अपनी चित्तवृत्तियों और अपेक्षाओं और कामनाओं के अनुसार अपनी धारणायें बना लेते हैं कि वह बहुत दुष्ट है, या बड़ा धर्मात्मा है। वह तो जैसा होगा वैसा होगा। यह मिलने पर ही पता चलेगा किन्तु हमने पहले ही अपने मन की अच्छी बुरी वासना के अनुसार उस व्यक्ति को रंग कर देखना शुरू कर दिया और कई बार हम अपनी पूर्वधारणाओं से इतने चिपक जाते हैं कि उससे भिन्न किसी चीज को मानना ही नहीं चाहते। यदि यह मान लिया कि मुर्गी की तीन टांगें होती हैं तो अपने अहंकार की रक्षा के लिये उसी प्रकार के तर्क जुटाकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुर्गी की दो नहीं तीन ही टांगें होती हैं। दो टांगें होने पर उसका बेलेंस बन ही नहीं सकता। तिपाही में तीन टांगें होती हैं तभी वह टिक पाती है। साइकिल में दो पहिये होते हैं अतः वह स्वतः खड़ी नहीं रह सकती, आदि–आदि तर्क देकर तीन टांगें दूसरे से भी मनवाना चाहते हैं। ध्यान के द्वारा हमारी संवेदना शक्ति–सूक्ष्म और राग–द्वेष रहित वस्तुनिष्ठ बनती है। वस्तु का जैसा स्वरूप है वही दिखाई पड़े। जैसी वस्तु है, वैसा ही उसे जानना यथार्थ प्रमा है। ध्यान से प्रमा का विकास होता है। ध्यानयोग से व्यक्तित्व में प्रामाणिकता आती है। पहले हमारी संवेदना सूक्ष्म होती है और शनैः–शनैः संवेदना शान्त हो जाती है। जब तक संवेदना शान्त नहीं होती, तब तक हम सत्य स्वरूप ईश्वर के आत्मा के साम्राज्य में पदार्पण नहीं कर सकते। बात पढ़ लेने से हमें सत्यानुभूति नहीं होती। दूसरों के विचारों का चश्मा लगाकर उसी ढंग से हम सोचने लगते हैं। पढ़ा हुआ ज्ञान उधार की पूँजी। जब तक अपनी मूल पूँजी नहीं होती, तब तक आत्म–विश्वास नहीं जगता।

ध्यान योग से कर्त्तापने और भोक्तापने का भाव शान्त हो जाता है। ध्यान से दृष्टाभाव, साक्षी–भाव विकसित होता है। बौद्ध लोग बर्मा में विपश्यना ध्यान–पद्धति से अपनी श्वास–प्रणाली को विशेष रूप से देखते–देखते साक्षी–भाव का विकास कर लेते हैं। साक्षी–भाव ऐसा भाव है कि उससे चित्त के संस्कार शिथिल हो जाते हैं। ध्यान से हृदय और श्वांस की गति भी कम हो जाती है। सभी इन्द्रियों का शिथिलीकरण होकर पूरे शरीर को ध्यान से पूर्ण विश्राम मिलता है, जिससे ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त होती है।

जब शरीर और मन पूर्ण स्वस्थ होता है तो साक्षी–भाव, द्रष्टा–भाव उभरने लगता है। दृश्य और दृष्टा को अलग–अलग देखने से भ्रम से होती है। साक्षी–भाव सँभलकर बैठने की सजगता की वह स्थिति है, जिसमें दृश्य को देखने पर जगत् के सभी व्यवहार करने पर भी कमल के पत्ते के जल की भाँति निर्लिप्तता रहती है। जो दृश्य में लिप्त हो जाते हैं, उनका जीवन खुद तमाशा बन जाता है। किसी उर्दू के शायर ने साक्षी–भाव को सरल शब्दों में यों कहा है–

सम्भर बैठ गाफिल जल्वाये,
मुहब्बत चाहने वालो।
तमाशा खुद न बन जाना,
तमाशा देखने वालो।।

मन की दो प्रकार की वृत्तियाँ हैं–अन्तर्मुखी और बाह्यमुखी। मन बहिर्मुख वृत्ति से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का भोग करता है, यही जीव–धर्म अहमिति माना है। पंच–दशीकार विद्यारण्य स्वामी ने जीव के स्वरूप का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है–

अहमिति, अभिमन्ता यः,
कर्त्ताऽसौ तस्य साधनम्।
मनस्तस्य क्रियेऽन्तर्व–
हिर्वृत्ती क्रमोत्थिते।।6।।

जीव अहंकार से अच्छा या बुरा व्यवहार करता है और तदनुसार फल भोगता है, वह बहिर्करण और अन्तःकरणों से कर्म करता है। पाँचों कर्मेन्द्रियाँ और पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्यकरण हैं तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्तःकरण हैं–

अन्तर्मुखेदमित्येषा वृत्तिः,
कर्त्तारमुल्लिखेत्।
बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्यं,
वस्तु इत्युल्लिखेत्।।7।।

जब मन अन्तर्मुखी वृत्ति से कर्म करता है तो कर्ता भोगापन्न होकर अहंकारवश हो जाता है। अन्तर्मुखी वृत्ति कर्त्ता कभी कर्म कभी भोक्ता कभी भोग्य (Subject and Object) को स्वानुभूति का विषय बनाती है। अन्तर्मुखी वृत्ति ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का विभाग विभिन्न इन्द्रियों द्वारा करती है। जैसे कान से शब्द का ग्रहण होना और नाक से गन्ध का ग्रहण। अहंकार वृत्ति से जीव कर्त्ता बनकर कर्म और क्रिया करते हुए भोक्ता बनकर विषयों को तदाकार वृत्ति बनाकर भोग करता है। जैसे विषय में यदि

दुःखाकार वृत्ति बनी तो दुःख का भोग हुआ। इस प्रकार पदार्थाकार और विषयाकार वृत्ति ही भोक्ता की क्रिया (भोग) है। अहंकार इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोक्ता है। भोक्ता–भोग्य और भोग तथा कर्त्ता, कर्म और क्रिया इन तीनों को जो प्रकाशित करता है वह साक्षी कहलाता है। ध्यान के द्वारा इसी साक्षी–भाव की उपलब्धि होती है। साक्षी–भाव की पूर्णता सम्यक्–ज्ञान है। जब साधक साक्षी–भाव को उपलब्ध हो जाता है तो उसके सम्मुख दृष्टा और दृश्य के अलग–अलग विभाग स्पष्ट होने लगते हैं, उससे पूर्व दृष्टा और दृश्य मिला–जुला एक रूप लगा करता है, यह भ्रम है। रस्सी और सर्प जो अलग सत्ता है, किन्तु जब दोनों एक के अधिष्ठान में मिलकर एक में दूसरे का आरोप हो जाता है तो यही भ्रान्ति–दर्शन और दुःख का कारण होता है। जब ध्यान द्वारा दृष्टा–भाव का विकास होता है, तो साधक कर्त्ता–कर्म और क्रिया की त्रिपुटी को जानकर अपने स्वरूप की ओर चल पड़ता है, उसके जीवन में वैराग्य उतरने लगता है। उसमें अकर्त्ताभाव और अभोक्ता, दृष्टा–भाव आने लगता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने अकर्त्ता–भाव की स्थिति का निरूपण किया है–

प्रकृत्यैव च कर्माणि
क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानम–
कर्तारं स पश्यति।।

–गीता 13/28

अर्थात् प्रकृति अपने गुणों तथा बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार, इन्द्रियों तथा महाभूतों से सारे कार्य कर रही है। इस प्रकार साक्षात्कार कर लेने पर योगी अकर्त्तव्य भावापन्न होकर निष्प्रपंच, साक्षी, चैतन्य, केवल और निर्गुण आत्मा को देखने में समर्थ होता है।

ध्यानयोग के अभ्यास से योगी नृत्यशाला (रंगशाला) के दीपक की भाँति तटस्थ हो जाता है।

ईक्षे शृणोमि जिघ्रामि,
स्वादयामि स्पर्शामि अहम्।
इति भासयते सर्वम्,
नृत्यशालास्थ दीपवत्।।

–पंच. 110/9

अर्थात् मैं देखता हूँ, सुनता हूँ, सूँघता हूँ, स्वाद लेता हूँ, स्पर्श करता हूँ। इस प्रकार साक्षी चिदाभास ही अहंकार के माध्यम से विषयों को प्रकाशित करता है और

भोग सम्पन्न कराता है। जैसे नृत्यशाला में जलता हुआ दीपक सब नाटक का साक्षी और प्रकाशक होता है वैसे ही साक्षी चेतनाभास अहंकार को भासित करता है। जब हम यह कहते हैं या अनुभव करते हैं–मैं देख रहा हूँ, तो उस समय मैं दृष्टारूप से कर्त्ता है और देखना क्रिया है तथा वस्तुरूप दृश्य है। इस मैं को भी देखने वाला साक्षी परमात्मा है। उसी ने दृश्य और दर्शन को प्रकाशित किया है। दर्शन क्रिया है, न होकर होने का नाम क्रिया होता है। जब ध्यान की सीढ़ी पकड़ कर योगी समाधि के शिखर पर चढ़कर संयम के बल से जड़ और चेतन को अलग–अलग देखने लगता है और अपने में छिपे हुए चेतन का अहसास करता है, तो उसके पूर्वाग्रह शिथिल पड़ते हैं। वह वस्तु का यथार्थ दृष्टा बनता है। पूर्वाग्रह गुरुभक्ति अपने–अपने दृष्टिकोण से वस्तु को देखा करता है। जैसे कहीं दुर्घटना हो जाये तो पुलिस का व्यक्ति देखेगा कि किस दफा के अन्दर कौन सा जुर्म बना और मुल्जिम कौन है। एक रास्ता चलता व्यक्ति घायल के प्रति सहानुभूति रखेगा। उसका प्रिय उसे तुरन्त अस्पताल में ले जाना चाहेगा। दृष्टिकोण भेद से क्रिया–भेद और व्यवहार–भेद हो जायेगा। जब दृश्य से अलग तटस्थ रहकर दृश्य को देखा जाय तो यही साक्षी–भाव है। इस भाव की साधना से ही आत्म–साक्षात्कार होता है।

लाजिम खुदी का होश,
वे खुदी के साथ।
उसको खुदा की खबर,
जिसको खुद की खबर नहीं।।

उस परमात्मा दृष्टा की दृष्टि (ज्ञान) कभी नष्ट नहीं होती, क्योंकि वह अविनाशी है, उसका ज्ञान क्रिया नहीं है। जो न हो वह हो जाये–यह क्रिया का लक्षण है, किन्तु परमात्मा में ज्ञान नित्य है। कभी ऐसा नहीं होता कि वह ज्ञान न हो। ध्यान द्वारा परमात्मा की दृष्टि अर्थात् उसका ज्ञान मिलता है, उसकी कृपा मिलती है।

नृत्यशाला में स्थित दीप–मालिक, नाटक के पात्र तथा दर्शक सबका प्रकाशक होता है और सबको एक–जैसा प्रकाशित करता है। भेदभाव नहीं करता। उन सबके हट जाने पर उनके अभाव को भी प्रकाशित करता है। इसी प्रकार साक्षी चेतन इस सृष्टि के नाटक का प्रकाशक है।

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

(आयुर्वेदीय विधिविधान)

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

जिसके देह में वात, पित्त और कफ, ये दोष (Temperaments) अग्नि, रस-रक्त आदि धातुएँ और धातुओं की मलक्रिया ये सब सम हैं तथा जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, वही पुरुष स्वस्थ कहलाता है।

शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।
लाघवं कर्मसामर्थ्ये दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते।।

शरीर को श्रम उत्पन्न हो, ऐसी क्रिया को व्यायाम (कसरत) कहते हैं। व्यायाम करने से देह सब ओर से सुडौल बनती है। शरीर की सुदृढ़ता, कांति-वृद्धि, अवयवों की सुन्दरता, जठराग्नि की प्रदीपता, आलस्य का अभाव, प्रसन्नता, लघुता और मृदुता की प्राप्ति होती है। परिश्रम, थकान, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि सहन करने की शक्ति बढ़ती है तथा परम आरोग्य की प्राप्ति होती है। स्थूलता कम करने के लिए व्यायाम के समान कोई भ साधन नहीं है। व्यायाम करने वाले को शत्रु का भय नहीं रहता, सहसा जरावस्था का आक्रमण नहीं होता और माँसपेशियाँ सुदृढ़ बनी रहती हैं। जैसे-सिंह के पास मृग आदि श्रुद्र पशु नहीं जा सकते, वैसे ही नियमपूर्वक व्यायाम करने से कोई भी व्याधि नहीं आ सकती। व्यायाम अवस्था, रूप और गुणों से हीन मनुष्यों को भी सुन्दर स्वरूप वाला बना देता है।

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा।
दृष्टि-प्रसाद-पुष्टयायुः स्वप्नसुत्यक्त्वदार्ढ्यकृत्।।

शरीर पर तेल की मालिश करने को तैलाभ्यंग कहते हैं। जो मनुष्य नित्य या 2-4 दिन बाद तेल मालिश करते रहते हैं, उनकी दृष्टि विमल, रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक्, देह सुदृढ़, शान्त निद्रा, त्वचा मुलायम और तेजस्वी तथा मन में प्रसन्नता बनी रहती है। कफ-वात का निरोध, धातुओं की पुष्टि और परिश्रम का शमन होता है। इसके अतिरिक्त जरावस्था आने पर भी देह में बल बना रहता है। मस्तिष्क, कर्णमूल और पादतल पर मर्दन करने पर मस्तिष्क और स्मरण-शक्ति को भी लाभ पहुँचता है।

मालिश न करते रहने से या इतर रोग आदि हेतुओं से जिस मनुष्य की त्वचा शुष्क, बालों की रूक्षता, खुजली चलना, वात–विकार, मैल बढ़ना आदि दोष हो गये हों, उनको तेल की मालिश करना अति हितकर है।

उद्वर्त्तनं कफहरं मेदसः प्रविलायतम्।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम्।।

स्नान से पहले उद्वर्त्तन (उबटन) लगाने से कफ और मेद का विलय होता है; अंग स्थिर और दृढ़ होते हैं; त्वचा तेजस्वी और मुलायम बनती है तथा शिराओं के मुख खुल जाते हैं। फिर पसीना नियमित रीति से निकलता रहता है, रक्ताभिसरण क्रिया बलवान् बनती है और त्वचा की ऊष्मा उत्तेजित होती है।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित्।।

नित्य–प्रति स्नान करने की महर्षियों ने आज्ञा की है। स्नान करने से मनोवृत्ति प्रसन्न होती है, अग्नि प्रदीप्त होती है। आयु, उत्साह, बल और अग्नि की वृद्धि होती है तथा खुजली, मैल, पसीना, परिश्रम, आलस्य, तृषा, दाह, त्वचा और रक्त–विकार नष्ट होते हैं। जो मनुष्य नित्य आवलों के चूर्ण से शरीर को मलकर स्नान करता है, वह पूर्ण आयु भोगता है।

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः।।

जो मनुष्य भोजन के पश्चात् विधिवत् मट्ठे का सेवन करता रहता है वह कदापि रोगी नहीं होता। तक्र से नष्ट हुए रोगों की उत्पत्ति पुनः नहीं हो सकती। जैसे स्वर्ग में देवों के लिए अमृत सुखदायक है, वैसे ही इस भूमण्डल पर मनुष्यों के लिए मट्ठा हितकारी है।

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं,
पिबति खुल नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वायु।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः।।

जो मनुष्य नित्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नासापुट से जलपान करता है, वह बुद्धिमान होता है। उसकी दृष्टि गरुड़ के समान तेजस्वी होती है तथा वलीपलित रहित और सब रोगों से मुक्त होता है।

तद्धाम परमं मम

—स्वामी निर्विकारानन्द सरस्वती

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने 'परमधाम' के विषय में निर्देश किया है—

न तद्भासयते सूर्यो न,
शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते,
तद्धाम परमं मम॥

—गीता 15/6

'जहाँ पर अग्नि एवं चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता और जहाँ पर पहुँच जाने पर फिर से पुनरागमन नहीं होता वह धाम मेरा परमधाम है।'

महाभारत में लिखा है कि जब गरुड़ जी इन्द्र—लोक में अमृत लेने गये, तब उन्हें एक—एक तत्त्व का आवरण पार करना पड़ा था। अर्थात् जिस लोक में हैं तो पाँचों तत्व, किन्तु भूतत्व की विशेषता है, उसका नाम 'भूलोक' पड़ गया। अब इसके ऊपर गतिमान होने पर एक घेरा ऐसा आता है कि जहाँ पर चार ही तत्व हैं, किन्तु वहाँ पर जलतत्व की विशेषता है। इसी घेरे में पहुँचने के पहले एक बहुत मोटा कुहरे का घेरा पार करना पड़ता है। तीन तत्व वाला आवरण है, उसमें अग्नि तत्व की विशेषता है। फिर दो तत्व वाला घेरा आता है, जिसमें वायु तत्व की विशेषता रहती है, तब अन्त में शुद्ध आकाश—तत्व का घेरा आता है। इसमें दूसरा कोई भी तत्व नहीं रहता। इस घेरे के बाद भी अहंकार का आवरण और फिर ज्ञान का आवरण आता है। तब विरजानन्द का "चतुर्दिक् मण्डलाकार' घेरा आता है। उसी घेरे के भीतर शुद्ध चिन्मय दिव्य तत्व से परिवेष्ठित 'परम धाम' आता है, जिसके भीतर करोड़ों सूर्य के प्रभाव वाले परात्पर ब्रह्म विलसित हो रहे हैं। जो भक्त अनन्य उपासना द्वारा परात्पर ब्रह्म की सेवा में पहुँच जाते हैं, उनका फिर पुनरागमन नहीं होता है, किन्तु परमधाम को छोड़कर और जितने भी अन्यान्य लोक हैं, वहाँ पर पहुँचे हुए प्राणियों को पुण्य भोग होने के पश्चात् 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'—पुनः इसी मृत्युलोक में लौटना पड़ता है; क्योंकि ये सभी लोक किसी—न—किसी तत्व वाले घेरे में ही रहते हैं। इन लोकों में जो देह प्राप्त होती है, उसमें भी तत्व विशेष रहता है। इसीलिए उसमें पुण्य भोगने की क्षमता रहती है।

'परमधाम' कितनी दूर है, थोड़ी सी इसकी कल्पना कर ली जाये, तब अन्य बातों

पर विचार किया जाये। जिस सूर्य मण्डल में हमारी पृथ्वी निवास करती है उस सूर्य की किरण जिस तरह मृत्यु लोक की ओर आती हैं, उसी तरह उतनी ही दूरी तक ऊर्ध्व लोक की ओर भी जाती हैं। इस सूर्य से ऊर्ध्व की ओर जहाँ से इस सूर्य की किरणें समाप्त हो जाती हैं, वहाँ से इस सूर्य से भी हजार गुने बड़े सूर्य का मण्डल प्रारम्भ होता है। उस सौर–मण्डल का ऊपरी घेरा जहाँ पर समाप्त होता है और जिसके बाद प्रकृति के सभी सप्तावरण क्रमशः समाप्त हो जाते हैं, वहाँ परमधाम की सीमा प्रारंभ होती है कि जिसके विषय में श्री गर्ग–संहिता में लिखा है–"जहाँ पर संसार का सबसे बड़ा सुख समाप्त होता है, वहाँ से परमधाम के सबसे बड़े दुःख की सीमा प्रारम्भ होती है।" अब विचार कर सकते हैं कि जहाँ की सीमा का सबसे बड़ा दुःख हमारे संसार के सबसे बड़े सुख को भी विलज्जित कर रहा है, वहाँ का सबसे बड़ा सुख कैसा होगा ? इसी से परमधाम के विषय में इस भौतिक मन, बुद्धि द्वारा कुछ भी विचार करना असंभव माना गया है। वहाँ का विषय अनुभवगम्य है। जब भजन करते–करते यह शरीर दिव्य हो जाता है, तब भगवत्कृपा से ही वहाँ का विषय कुछ–कुछ अनुभव किया जा सकता है।

चन्द्रलोक या सूर्यलोक तक चाहे 20 लाख हार्सपावर या 100 लाख हार्सपावर के इंजिन वाला राकेट भले ही मानव को पहुँचाने में सफल हो जाये; किन्तु एक करोड़ हार्सपावर वाले इंजिन की भी बस की बात न होगी कि वह मानव को 'परमधाम' तक ले जा सके; क्योंकि जहाँ तक कोई तत्व होंगे, वहीं तक राकेट गतिमान हो सकते हैं। शुद्ध आकाश तत्व वाले घेरे में राकेट नहीं प्रवेश कर सकते; क्योंकि वहाँ पर वायु–तत्व भी नहीं है। तब आगे बढ़ना तो सर्वथा असंभव ही होगा। वहाँ पर तो अनन्य चिन्तन करने वाले भक्त को स्वयं भगवान के पार्षद 'दिव्य विमान' से दिव्य स्वरूप प्रदान करके ले जाते हैं। जैसे श्री चक्रवर्ती दशरथ जी महाराज को दिव्य देह देकर 'दिव्य विमान' द्वारा लंका विजय हो जाने पर श्री रामजी पुनः भेंट कर लेने के बाद ले गये थे। परम–धाम में परिकर बनकर वहीं सेवा करनी सुलभ होती है कि जो सेवा भक्त यहाँ पर करना पसन्द करता है। इसी से अनन्य भक्त मोक्ष नहीं चाहता; क्योंकि मोक्ष में रावण, कुम्भकर्ण और शिशुपाल की ज्योति, जैसे भगवान में सबके देखते–देखते विलीन हो गयी, वैसे ही ज्ञानी का आत्मा भी विलीन हो जाता है।

हम अपने भारतवर्ष में रहकर जिस तरह आकाश में अनन्त लोक देखते हैं, ठीक उसी प्रकार अमेरिका वाले भी अपनी ओर के आकाश में अनन्त लोक चमकते हुए देखते हैं। जिस भूलोक में हमारा भारत वर्ष है, वह भूलोक अनन्त ब्रह्माण्डों के ठीक मध्य में

है। अनन्त ब्रह्माण्ड उस परम धाम के मध्य में (उदर में) ठीक उसी प्रकार से है, जैसे अमरूद के फल में हजारों बीज होते हैं। हमारे प्रथम ब्रह्माण्ड (भूलोक) के चतुर्दिक् अनन्त ब्रह्माण्ड हैं एवं अनन्त ब्रह्माण्डों के चतुर्दिक 'सप्तावरण' के घेरे को पार करने पर परम–धाम परिव्याप्त है। उसी परमधाम को नित्यधाम वैकुण्ठ, साकेत और गोलोक–धाम आदि भी कहते हैं। श्री जनकपुर, अयोध्या, काशी, चित्रकूट अवध, नीलाचल, पण्ढरपुर, द्वारका, रामेश्वरम्, बद्रीनारायण, कैलाश, वृन्दावन, मथुरामण्डल–ये सभी मण्डल 'परमधाम' में ही विलसित हो रहे हैं। भूतल में भी वहाँ से इनका अवतरण होता है।

मृत्यु लोक में रहकर चाहे कोई भारतवर्ष में 'परमधाम' के प्रति निष्ठा रखकर उपासना करे और चाहे अमेरिका में रहकर उपासना करे, दोनों ही भक्तों का जब प्राण निकलेगा, तब उसको सीधे परमधाम में ही जाना होगा जिस प्रकार भारत वाला भक्त सीधे ऊर्ध्व की ओर गमन करेगा, उसी प्रकार अमेरिका वाले को भी अपने यहाँ के ऊर्ध्व–लोक की ओर ही गमन करना पड़ेगा। वह पृथ्वी को बेधकर हमारे भारत वाले ऊर्ध्व–लोक होकर परमधाम नहीं जायेगा। रामचरित मानस में श्री काकभुशुण्डि जी ने बतलाया है कि "हमने भगवान् राम के उदर में अनन्त ब्रह्माण्ड देखे हैं।"

चूँकि भगवान् में और धाम में कोई अन्तर नहीं है, अस्तु–परमधाम के हृदय में ही अनन्त ब्रह्माण्ड ठीक वैसे ही भरे हुये एक दूसरे के आकर्षण में चिपके हुए हैं, जैसे समुद्र में जल के भीतर अनन्त जीव भरे रहते हैं।

तभी तो कृष्ण भगवान् ने कहा है–'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मपि पश्यति' अर्थात्–जो मुझे सर्वत्र सब में देखता है और सबको मुझमें देखता है, वही वास्तव में मुझे देखता है और उससे मैं कदापि नहीं छिपा रह सकता।'

श्री भगवान् की तरह भगवत्धाम भी दिव्य है, असीम है और अनन्त ब्रह्माण्डों में चतुर्दिक् परिव्याप्त है। हमारा भूलोक तो परमधाम के ठीक हृदय–मध्य में है, जिसमें भारतवर्ष आया है। इस भूलोक का वास्तविक नाम है–प्रथम ब्रह्माण्ड। कल्प के प्रारम्भ में जब परात्पर ब्रह्म के हृदय से आह्लादिनी शक्ति का प्राकट्य होता है और लीला विलास हेतु उनसे तीन शक्तियाँ प्रकट होती हैं–यथा क्रम से युगल सरकार के 'दिव्य संग्रह' से अनन्त सखा एवं सखी, परिकर समूह 'मानवी सृष्टि' के रूप में प्रकट होते हैं तो सर्वप्रथम आँख मिचौली खेल प्रारम्भ करने के हेतु से परमधाम के ठीक मध्य में प्रथम ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। स्वयं भगवान् छिपते हैं और अनन्त परिकर खोजते हैं। भगवान् क्रमशः 84 लाख योनियाँ धारण करते हुए अपने परिकरों के ही सामने से निकलते हैं, परन्तु कोई उन्हें पहचान नहीं पाते, वे धीरे–धीरे उन विभिन्न स्वरूपों में ही भ्रमित हो जाते हैं

एवं मनोरंजन रूप में उन्हें पकड़–पकड़कर पालने–पोसने लग जाते हैं। इस तरह दिव्य देहधारी परिकर भी मोह एवं भ्रम में पड़कर भगवान् को खोजना बन्द कर देते हैं। और विवाह करके मैथुनी सृष्टि का विस्तार करने लग जाते हैं।

इसी से रामायण में कहा गया है–

तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहुकाल करिअ सतसंगा।।

–मानस 7–60–2

जब तक मोह और भ्रम का निवारण नहीं होगा, तब तक हम इस विकारी शरीर को ही अपना स्वरूप माने रहेंगे, यही कहलायेगा 'भ्रम'। अन्यथा हमारा स्वरूप तो दिव्य है, परन्तु हम भ्रम में पड़कर अपने को भौतिक विकारी शरीर मान बैठे हैं। वैसे वस्तुतः हम श्रीभगवान् के ही दिव्य–सनातन अंश हैं, फिर भी पिता, पुत्र, स्त्री, माता इत्यादि गृहस्थी के मिथ्या मोह में फँसकर हम अपने तथा भगवान् के दिव्य सम्बन्धों को भूल गये हैं और झूठी क्षणिक वस्तुओं एवं व्यक्तियों से ही हमने अपना नाता जोड़ लिया है अन्यथा हम सभी प्राणी उसी परमधाम के सनातन निवासी हैं और उसी परात्पर ब्रह्म के हम दिव्य अंश हैं। हमारा प्रथम स्वरूप भी दिव्य था एवं अनन्य भक्ति करते–करते परमधाम जाते समय भी हमें दिव्य स्वरूप प्राप्त हो जायेगा। इस बीच वाले पंच–भौतिक देह को भी वहीं छोड़ जाना पड़ेगा। हम हैं–

ईश्वर अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

–मानस 7/116/1

श्रीभगवान् ने भी यही बताया है कि "सारा संसार हमारे एक अंशमात्र में स्थित है। ठीक उसी प्रकार जैसे शरीर के एक अंशमात्र के भीतर से ही प्रकट होने वाले तिल" का दाग स्थित रहता है, हम भी भगवान् के अंश हैं और भगवान् में स्थित हैं।' अस्तु–यदि भगवान् अपने परमधाम में निवास करते हैं, तो हम भी वहीं के मूल–निवासी हैं और उन्हीं परम प्रभु की अनन्य भक्ति द्वारा कृपा प्राप्त करके परमधाम में निवास करने का अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

"ॐ श्रीरामलाल प्रभवे नमः"

सुख का रास्ता क्या है ?

—अन्तूराम यादव, प्रयागराज, मो. 9936678368, 7376691758

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर आनन्द कन्द अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन और सभी आदरणीय भाई-बहनों को सादर जय गुरुदेव! भाई और बहनों! मैंने सन्तों से जो कुछ सुना है, समझा है, उन्हीं के विचारों को अपने टूटे-फूटे शब्दों में आप के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ। व्यवहार पक्ष एवं अध्यात्म पक्ष मानव जीवन के ये दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। व्यवहार पक्ष अगर ठीक नहीं है तो अध्यात्म में अथवा योग मार्ग में प्रवेश सम्भव नहीं है। यदि यह कहा जाये कि अध्यात्म का आधार व्यवहार पक्ष ही है तो शायद कोई अतिशयोक्ति न होगी। अध्यात्म की राह का पथिक बनने के लिये एक साधक का व्यवहार अच्छा होना बहुत आवश्यक है। अगर हमारा व्यवहार सरल होगा, अच्छा होगा तभी हमारा मन शान्त होगा। शान्तिमय जीवन ही सुखी जीवन हो सकता है। जब हमारे जीवन में सुख-शान्ति होगी तब हम योग मार्ग पर चल कर जप, धारणा, ध्यान का आश्रय लेकर अपना कल्याण कर सकते हैं। आइए, आज मानव जीवन के व्यवहार पक्ष पर तनिक विचार करें।

अगर किसी से पूछा जाये कि संसार में आप क्या चाहते हैं ? सम्भवतः सबका यही उत्तर होगा-हम सुख चाहते हैं। जब हम सुख चाहते हैं तो आखिर सुख का रास्ता है क्या ? सब जीव सुख चाहते हैं। कीड़े-मकोड़े भी सुख चाहते हैं। दुख जीव का सबसे बड़ा शत्रु है। कोई जीव दुख नहीं चाहता। केवल सुख चाहता है। सुख का रास्ता क्या है ? जो जीवन गुजर की बातें हैं, उस दिशा में तो सभी काम करते हैं-उसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। सभी लोग जीवन-गुजर का धन्धा करते हैं, संग्रह करते हैं और उसका उपयोग करते हैं लेकिन जो खास काम है, उसे कम लोग करते हैं। सच्चे सुख पर चलने वाले कम हैं। सच्चा सुख है-मन की प्रसन्नता और मन की प्रसन्नता होती है-अहंकार, ममकार को मारने से, अपने मन की मैल को दूर करने से। अपने मन की मैल जब तक दूर नहीं होगी तब तक प्रसन्नता नहीं होगी। जब प्रसन्नता नहीं होगी तो सुख नहीं होगा। क्षणिक प्रसन्नता आ जाना अलग बात है। लड़का पैदा हो गया क्षणिक प्रसन्नता आ गई, थोड़ा धन मिल गया तो प्रसन्नता आ गई, टी.वी. के सामने बैठे तो थोड़ी सी प्रसन्नता वहाँ भी आ गई; अनुकूल लोग मिल गये तो थोड़ी प्रसन्नता आ गई। लेकिन यह प्रसन्नता बालू पर पड़ी जल बूँद की तरह है। यह स्थिर नहीं है। स्थिर प्रसन्नता जीवन का सच्चा सुख है। स्थिर प्रसन्नता होती है-अपने मन के मैल को दूर करने से। यह काम कम लोग करते हैं। इसलिए सुख की सारी सामग्री बटोरने के बाद भी सब दुखी रहते हैं। जिनकी जैसी शक्ति है, पुरुषार्थ है, प्रारब्ध है, वैसा पदार्थों का संग्रह हो जाता है। थोड़े में गुजर होता है, बड़े में गुजर होता है और जिनके पास कुछ नहीं है उनका भी गुजर होता है।

ऐसे-ऐसे भवन हैं जिसमें सैकड़ों लोग रह सकते हैं लेकिन उसमें तीन-चार लोगों का छोटा

परिवार रहता है। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही झोपड़ी है और उसी में माई-पिल्ला सहित पूरा परिवार रहता है। गाँव में तो लोग घास-फूस बटोर कर झोपड़ी बना लेते हैं, शहरों में घास-फूस नहीं मिलता। बड़े-बड़े शहरों में करोड़पतियों के भवन के पीछे बाँस की कमची झुका कर जमीन में गाड़ देते हैं, उस पर प्लास्टिक लपेट देते हैं, नीचे बोरा बिछा लेते हैं, बस यही उनका भवन है और उसी में घुस कर सब रहते हैं। बाहर तीन ईंट या पत्थर रख कर उस पर डेकची में कुछ पका कर खा लेते हैं। उनके बच्चे भी हँसते हैं, दौड़ते हैं, खेलते हैं और स्त्री-पुरुष भी हँसते हैं, गाते-बजाते हैं। बाहर की बातें बहुत विषमतापूर्वक हैं। वस्तुओं के बहुत संग्रह से सुख का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यहाँ एक सच्ची घटना का उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है--

जमुना लाल बजाज भारत के एक बहुत बड़े पूँजीपति थे। आज भी बजाज के नाम से अनेक कम्पनी चल रही हैं। जमुनालाल सत्संग के लिए एक सन्त के पास जाया करते थे। एक दिन जब वे सन्त के पास गये तो उनके खिन्न और उदास चेहरे को देखकर सन्त ने पूछा-सेठ जी! आज इतने उदास क्यों हो ? जमुना लाल ने बताया कि महाराज कुछ बात ही ऐसी है। रात में खाना नहीं खाया, नींद नहीं आई, बड़ी उलझन में हूँ। सन्त ने कहा-इसका कारण बताओ हो सकता है मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ। जमुना लाल ने बताया-महाराज! मैंने अपने मुनीम से कहा कि मेरी सारी सम्पत्ति का ब्यौरा इकट्ठा करके मुझे बताओ कि बिना कुछ किये इस धन से मेरी कितनी पीढ़ियों का पालन-पोषण हो सकता है। महाराज! कल मुनीम ने बताया कि बिना कुछ किये आप की सात पीढ़ियों का पालन-पोषण आप के संचित धन से हो सकता है। तब से मैं बड़ा दुखी और चिंतित हूँ कि मेरी आठवीं पीढ़ी का क्या होगा ? सन्त ने कहा कि कल शाम तुम मेरे पास आना मैं इसका निदान बताऊँगा। जब यहाँ आना अपने साथ कुछ आटा, दाल, चावल लेते आना और तुमने जो भव्य मन्दिर बनवाया है, उसी के पीछे एक झोपड़ी में एक दम्पत्ति रहता है, उसे देते हुए आना। जुमना लाल बजाज ने जब उस झोपड़ी के बाहर से आवाज लगाया तो उसमें से एक औरत बाहर आई, उस समय उसका पति कहीं बाहर गया था। बजाज ने कहा देवी! यह कुछ राशन है रख लो तुम्हारे काम आयेगा। उस महिला ने जवाब दिया सेठजी! इस समय के लिए तो मेरे पास व्यवस्था है, कुछ ऐसे भी लोग होंगे जिनके पास इस समय के लिए भोजन की व्यवस्था नहीं होगी। यह राशन अगर आप उन्हें दे दें तो ज्यादा अच्छा होगा। बजाज ने कहा अरे! अगर इस वक्त के लिए व्यवस्था है तो सुबह के लिए रख लो। फिर उत्तर मिला-महाशय! जिस व्यवस्थापक ने, जिस परम पिता परमेश्वर ने शाम के लिए व्यवस्था किया है क्या वह सुबह के लिए व्यवस्था नहीं करेगा। मेरी सुबह की व्यवस्था के लिए आप चिन्ता न करें, वह तो हो ही जायेगी। इस राशन को आप किसी जरूरतमन्द को दे दें। महिला की इस बात को सुनकर जमुना लाल बजाज की आँखें खुल गईं, मानो उन्हें आत्मज्ञान हो गया हो। वे मन ही मन अपने को धिक्कारने लगे कि इस महिला को सुबह की चिन्ता नहीं और मैं अपनी आठवीं पीढ़ी के लिए सोच-सोचकर मरा जा रहा हूँ। तनिक विचार करें-सुखी कौन है, धनवाला या बिना धनवाला।

बहुत दिन पहले की बात है। गुजरात के एक गाँव में एक सन्त का प्रवचन हो रहा था। वहीं पास में मजदूरों की झोपड़ियाँ थीं। वे किसानों के खेत से कपास चुनते थे और रात में नाचते-गाते

थे। वे खाते क्या थे–मक्के की रोटी और उन्हीं किसानों के खेतों में से कोमल–कोमल पत्तेवाली वनस्पति तोड़ लेते थे और उसी की सब्जी बना लेते थे। कभी–कभी किसान लोग उन्हें छाछ देते थे। कोमल वनस्पतियों की सब्जी, छाछ और मक्के की रोटी, बस और कुछ नहीं। सब छहररे बदन, स्वस्थ शरीर, वे रात में प्रतिदिन दो–तीन घण्टे नाचते–गाते थे। एक दिन शाम को जब सन्त जी प्रवचन में बैठे तो वहाँ उपस्थित भक्तों से पूछा कि क्या आप लोग इन मजदूरों के जैसा नाच, गा सकते हैं ? सबने एक स्वर से यही कहा–महाराज! प्रचुर मात्रा में सुविधा की सारी सामग्री होने के बावजूद हम लोगों के चेहरे पर हँसी तक नहीं आती, नाचना–गाना तो दूर की बात है। रूखा–सूखा खाने वाले मजदूरों का गठीला और सुडौल शरीर। उन्हें न तो शुगर है, न ब्लडप्रेशर, न हर्ट की बीमारी है। धनी लोगों को बीमारी ही बीमारी। इस प्रकार दुनिया के पदार्थों से सुख–दुख का मूल्यांकन नहीं हो सकता। संसार की वस्तुओं का संग्रह कम–ज्यादा सबके पास है। एक बात जो जीवन में असली है वह काम नहीं किया जाता। वह काम है अपने मन को माजना। अपने मन के मैल को खुरच–खुरचकर धोना और निकालना। अपने मन को शुद्ध करना, निर्माण करना, निष्काम करना, यही काम नहीं हो पाता। इसलिए स्थिर सुख का अनुभव नहीं होता। मन ऐसा तिकड़मी है, सज्जनता आने पर भी दुख दूर नहीं हो पाता। साधु–सन्त होने पर भी मन का दुख दूर नहीं होगा, केवल थोड़ी–मोड़ी साधना से। जब तक अहंता–ममता की जड़ खोद कर न निकाली जायेगी, स्थिर प्रसन्नता नहीं हो सकती। नाम–रूप की ममता जब तक खोदकर नहीं फेंक दी जायेगी तब तक स्थिर प्रसन्नता नहीं हो सकती। हमारा मन उन वस्तुओं में रमता है जो स्थिर नहीं है। आज के पचास वर्ष पूर्व की चीजें कहाँ हैं। महाकाल के बीच में पचास वर्ष एक सेकेण्ड से भी कम है। अनन्त काल बीतते जायेंगे। काल के इस प्रवाह में प्राणी–पदार्थ बनते और बुझते रहेंगे। पानी के बुदबुदे की तरह। पानी के बुदबुदा, अस मानुष की जात। देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा परभात।

हमारे दादे–बाबे सब बुझ गये। बारी–बारी से सबकी यही गति होनी है। एक शायर ने कहा है–

"जैसे चल बसना वयाँ, औरों का हम करते हैं आज।
कल मेरे दोस्त कहेंगे, आज वो भी चल दिये।।"

किस प्राणी–पदार्थ का अहंकार हमें करना चाहिए। जो नाम–रूप की अहंता–ममता को मिटाता है वही साधक है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है–"जड़–चेतन हि ग्रन्थि पड़ि गई, यद्यपि मृषा छूटत कठिनई।" यह पूरा वैज्ञानिक वचन है। चेतन अपने मन में जड़ पदार्थों के प्रति जो आसक्ति बना रखी है, यही जड़–चेतन की गाँठ है। अपने मन में मान–मान करके जो मोह कर लिया है, वही जड़–चेतन की गाँठ है। जिन प्राणी–पदार्थों को लेकर के मेरे मन में मोह है, वह अन्त में कुछ नहीं है लेकिन मोह छूटने में कठिनता हो रही है। अविवेक के कारण ऐसा है जब विवेक हो जायेगा तो उसमें कोई दम नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि व्यवहार नहीं करना चाहिए। ममता न करके भी शुद्ध प्रेम का व्यवहार किया जा सकता है परन्तु उसमें दृढ़ता नहीं होनी चाहिए। दृढ़तापूर्वक ममता बंधन है।

हमारा जीवन है भी और नहीं भी है और यह बहुत जल्द होने वाला है। यह किसी को पता नहीं है कि कब क्या होने वाला है। मनुष्यों द्वारा निर्मित बड़े–बड़े यंत्र बड़ी–बड़ी मशीनों को देख

कर इंजीनियर बता सकता है कि कोई दैवी आपदा न आये तो ये इतने दिनों तक चल सकती है लेकिन स्वस्थ, सुन्दर जवान शरीर को देखकर कोई डॉक्टर यह गारण्टी नहीं दे सकता कि यह इतने दिन तक रहेगा। यह अचानक जाने वाला है। ऐसी क्षणिक वस्तुओं की ममता अज्ञानता के सिवाय क्या है। परन्तु यह छूटती नहीं है। जिनका पक्का निश्चय हो जाता है, उनकी छूट जाती है।

हानि जानकर के त्याग और लाभ जानकर के ग्रहण, यह मनुष्य का स्वभाव है। अगर कोई व्यंजन की थाली आपके सामने रखी हो, अद्भुत व्यंजन और आपका मन खूब ललचा रहा हो। वाह! ऐसा व्यंजन कभी नहीं मिला। जब आप खाने चले तो किसी ने आपके कान में धीरे से कहा कि इस में जहर मिला है। आप झट से उठ खड़े होंगे, वहाँ बैठे भी नहीं रहेंगे। क्योंकि इसमें हानि दिखती है। प्रिय से प्रिय को भी यदि यह पता चल जाये कि यह हमारा घाती है तो तुरन्त उसे त्याग देंगे। आप कीमती हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी लेकर जा रहे हों और सामने बन्दूक धारी मिल जाये और कहे कि धर दो नहीं भून डालेंगे। अगर आप समझदार हैं तो तुरन्त फेंक देंगे। लोग अपने शरीर तक का त्याग कर देते हैं। त्याग में इतना बड़ा बल है। किसमें त्याग की शक्ति नहीं है ? परन्तु लोग तम्बाकू नहीं छोड़ पाते। जब शरीर छोड़ सकते हैं तो क्या तम्बाकू नहीं छोड़ सकते ? मनुष्य में त्याग का बल है, उसे समझें। आध्यात्मिक क्षेत्र में केवल एक ही काम है–अपने मन को साफ करना। आपको अपना मन साफ करना बहुत बड़ा उपदेश है जो लोग समझ पायेंगे इस उपदेश को ग्रहण करके अपने मन को साफ करने का प्रयास करेंगे। मुँह से आवाज करके जो उपदेश किया जाता है उससे ज्यादा वजनदार है, हम अपने मन को निर्मल बना लें। जिनको प्रेरणा लेना होगा लेंगे। हम सबको ठीक करने की चिन्ता में दिन बिता दिये और अपना सुधार नहीं किये तो क्या किये। अगर हम परिवार और समाज का हित चाहते हैं तो अपना हित कर लें, सबका हित हो जायेगा। सबका हित बतावें और अपना हित न करें तो सब बेकार है।

इसलिए सच्चा सुख जिसे कहते हैं वह है–चित्त की प्रसन्नता। आप का मन हर समय कमल की तरह खिला रहना चाहिए, चेहरे पर प्रसन्नता रहनी चाहिए, मुस्कुराहट और आनन्द रहना चाहिए। आपको ऐसा रहना चाहिए जिससे आपको देख कर दूसरे लोग खुश हों। जिसके जीवन में प्रसन्नता नहीं है तो कौन सी उपलब्धि है। प्रसन्नता जीवन का सबसे बड़ा सुख है। इस जठराग्नि को शान्त करने के लिए भात–रोटी कुछ मिल जाये, तन ढकने के लिए कुछ कपड़े और सोने के लिए थोड़ी सी जगह मिले तथा मन प्रसन्न रहे, बस हो गया काम। लेकिन हम दुनिया में तो बहुत कुछ चाहते हैं और चाह–चाह करके जलते रहते हैं। असली सुख खो देते हैं। सन्त कबीर ने कहा है–

"झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद।
जगत चबैना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।।"

जगत काल का चबैना है। सभी लोग काल के आहार हैं। बारी–बारी से काल सबको अपना आहार बनायेगा। इस प्रकार काल का चक्र चल रहा है। जीवन क्षणिक है। कोई किसी का नहीं है और कुछ किसी का नहीं है। जो कुछ दिखाई दे रहा है, सब तमाशा है और उसके अन्दर अहंता–ममता करके जल–जल करके अपना जीवन बिताते हैं। क्या मतलब है ऐसे जीवन का। अतः निर्मान बनें, निष्काम बनें, विनम्र बनें। सबसे विनम्र बनें। दुनिया में सब बड़े हैं, सबसे छोटा

मैं हूँ, ऐसा मान लेने में हमारा क्या नुकसान है।

''या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय''

अर्थात् अपने अहंकार को छोड़ दो, मिटा दो, निर्मान हो जाओ, देखोगे सभी लोग तुम्हारे ऊपर दया करेंगे। उपदेश देना बहुत सरल है, उपदेश के अनुसार जीवन बनाना तभी सरल होगा जब सुख–लाभ का पक्का निश्चय हो जायेगा और इसके लिए करना कुछ नहीं है–सह लेना है, बस। सबकी सहो। पिता की सहो, पुत्र की सहो, गुरु की सहो, शिष्य की सहो, भाई की सहो, पड़ोसी की सहो, पति की सहो, पत्नी की सहो। सबका मन अलग, सबका स्वभाव अलग, सबका विचार अलग, सबका संस्कार अलग। अगर सहोगे नहीं तो लड़ोगे। जिन्दगी लड़ाई में चली जायेगी और दुख भोगोगे। इसलिए सन्त ने कहा कि लड़ो नहीं, सहो। मीठा बोलो, विनम्र होकर बोलो सब ठीक हो जायेगा। अगर नहीं सहोगे तो घर को लंका काण्ड बनाओगे। मन को दुखी करोगे और व्यवहारिक जीवन भी सुखी नहीं रहेगा। एक विद्वान ने कहा है–

''मैंने अपनी जिन्दगी को और आसाँ बना लिया।
कुछ से माफी माँग लिया और कुछ को माफ कर दिया।''

सुख–शान्ति का सही रास्ता है। अगर हमसे कोई भूल हो जाये तो तुरन्त क्षमा माँग लें और अगर किसी दूसरे से भूल हो जाये तो उसे माफ कर दें। सही सूत्र अपना कर हम अपना जीवन सुखी बना सकते हैं। जीवन का सबसे बड़ा सुख है–चित्त की प्रसन्नता। उसके लिए व्यक्तिगत साधन बहुत सरल है और वह साधन है–मन को मांजना, धोना, साफ करना, निर्मान करना, निष्काम करना, विनम्र होना, सहनशील होना।

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में स्पष्ट रूप से कहा है कि साधक को आध्यात्म में प्रवेश के लिए यज्ञ, उपवास, तप इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। एक चौपाई में उन्होंने मानस का सार प्रस्तुत कर दिया है जिसको सन्तों ने मानस का मक्खन कहा है। वह चौपाई है–

''सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
यथा लाभ संतोष सदाई।।''

अर्थात् हमारा स्वभाव यानी व्यवहार सरल हो, मन में किसी प्रकार की कुटिलता न हो अर्थात् मन निर्मल हो और प्रारब्ध पुरुषार्थ–अनुसार जो कुछ मिल जाये उसी में सदैव सन्तुष्ट रहें। अगर हम अपना जीवन इसके अनुरूप बना लें तो यही सबसे बड़ी साधना और जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि और ऊँचाई है। यदि हम अपने जीवन को सुखमय बना कर योग मार्ग में लगाना चाहते हैं, धारणा–ध्यान–समाधि में प्रवेश करना चाहते हैं, मानव जीवन के मूल उद्देश्य (कल्याण, मोक्ष) को प्राप्त करना चाहते हैं तो सन्तों के उपरोक्त अमृत वचन के अनुसार अपने जीवन के व्यवहार पक्ष को भली–भाँति सुधारना होगा।

लेख में हुई त्रुटियों के लिए क्षमा–याचना करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग भवेत।।''

सादर जयगुरुदेव!

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।
योगेश्वर प्रभु रामलाल के पद नख हृदय धरूँ।।

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज ने, कितने पतितो को तारा।
जिसने भी यहाँ शीश झुकाया, प्रभुजी का मिला सहारा।।
अभय बनाया पावन-रज ने, महिमा कहाँ लौं कहूं।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

जीवन की बुझती ज्योति, यहाँ आकर ज्वलित हुई है।
मुरझी हुई जीवन आशायें, इस आँगन में महक उठी हैं।।
श्री गुरुवर के " रज प्रसाद " की सुध ही न बिसरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

मानव सब सारे प्रयत्नों को कर, हाथ नहीं कुछ पाता है।
तब प्रभु के चरणों की पावन-रज से, आशा की किरण जगाता है।।
प्रभु रामलाल की अमर धरोहर, अपने शीश धरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 NOVEMBER 2023

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
एकमात्र मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्माद्पुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

विचार की शक्ति

विचार की शक्ति की वे तरंगें जिनके साथ संकल्प शक्ति का प्रबल बल विद्यमान होता है, मनुष्य के मस्तिष्क से निकलकर रुकावट और विरोध के होते हुए भी उस समय तक निरन्तर दौड़ती रहती हैं, जब तक उनको कोई ऐसा मन न मिल जाए, जो उस विचार के साथ सहानुभूति और अनुकूलता न रखता हो।

यदि आप घृणा, धिक्कार या शत्रुता मिश्रित विचार संकल्प-शक्ति के साथ किसी के पास भेजेंगे तो वे जीवित शक्ति बन जायेंगे और वे तब तक बराबर दौड़ते रहेंगे, जब तक कि वे उसके समीप तक न पहुँच जाएँ, जिसके लिए वे भेजे गये हैं। इसी प्रकार प्रेम और अच्छी नीयत प्रत्येक विचार भी संकल्प-शक्ति का सहारा लेकर उस तक पहुँचकर ही दम लेता है, जिसके लिये वह प्रेरित किया गया है।

-योगीसियाराम